निरुत्तर तन्त्र

सम्पादक

'कुलभूषण' पं० रमादत्त शुक्ल एम० ए०

प्रकाशक

पं० देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग–६

गुप्तावतार दुर्लभ तन्त्र-माला—द्वितीय वर्ष-मणि २

निरुत्तर तन्त्रम्

(संशोधित व परिवर्धित संस्करण)

सम्पादक

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

प्रकाशक

कल्याण-मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६

द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

६:

मूल्य [illegible] रुपए

प्राप्ति-स्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६

आश्विन पूर्णिमा २०३६ । ५ अक्टूबर ७९

मुद्रक

परावाणी प्रेस

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग-६

अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	मन्त्र-यन्त्रा	मन्त्र-तन्त्रा
२	४	कालिकेव	कालिकैव
३	१३	पशु	पशू
६	१५	देवि ! वसेद्	वसेद्
८	५	मनुः	मनुम्
१०	१०	जटा-तारा	जटा-भारा
१५	९	मुखोद्वये	मुखोदये
१५	१२	शैल-वासे	शैलावासे
१६	१८	समुद्भूतः	समुद्भूताः
२२	५	द्विजातीनां	द्विजाति
२४	१५	प्रकृत्यथ	प्रकृत्याथ
२४	१९	प्रकृतिस्तत्त्व	प्रकृतेस्तत्त्व
२७	४	जपन्	जपेन्
२७	७	लोपनं	लोपं
२७	१०	अग्र	अग्रे
२७	१७	रौरवं	रौरवे
२८	१	हानिः	हानि
२९	१०	भाजनाः	भाजनः
३७	१४	सिन्दूरः	सिन्दूरं
३८	१९	स्वीकृतेषु	स्त्री-कृतेषु
३९	१५	भग-देवी	भगन्दरी

पृष्ठ ४ की ४ थी पंक्ति के बाद निम्न पंक्ति जोड़ लें—

कला-पूजा कृता येन शिव एव न संशयः ।
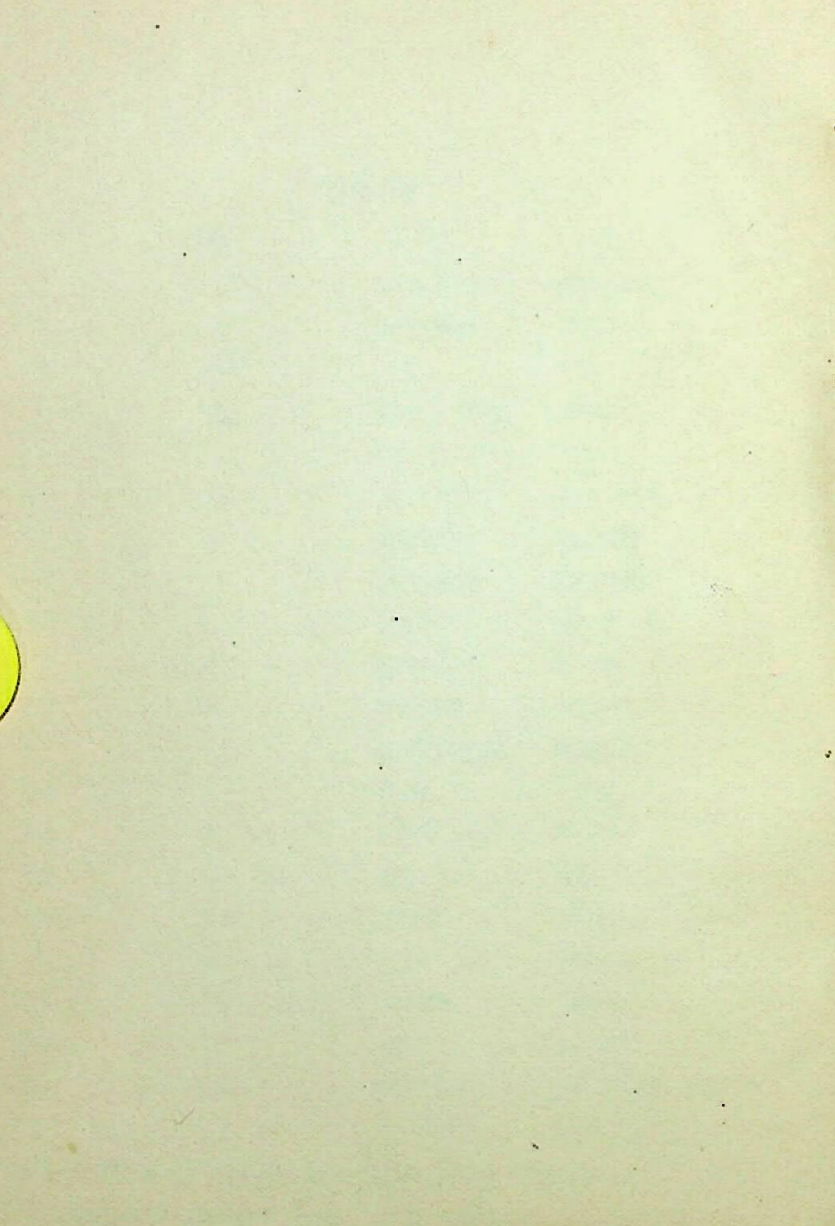
परिचय

प्रथम पटल

सभी सिद्ध विद्याओं की प्रकृति दक्षिणा काली हैं। ऐसी शुभ दक्षिणा काली का और काली-कुल का चिन्तन वीर या दिव्य भाव से करना चाहिये। श्री-कुल का चिन्तन तीनों भावों से प्रशस्त है। काली-कुल में काली, तारा, रक्त-काली, भुवनेश्वरी, महिष-मर्दिनी, त्रिपुटा, त्वरिता, दुर्गा और प्रत्यङ्गिरा प्रख्यात हैं। श्री-कुल में सुन्दरी, भैरवी, बाला, बगला, कमला, धूमावती, मातङ्गी, स्वप्नावती और मधुमती प्रसिद्ध हैं।

भाव तीन हैं और उन्हीं के अनुसार मन्त्र तथा देवता हैं। इसी प्रकार कुल-शास्त्र-परायण गुरु भी बहुत प्रकार के हैं। पशु-गुरु से दीक्षा पानेवाला पशु ही होता है, वीर-गुरु से दीक्षित वीर होता है और दिव्य गुरु की कृपा पानेवाला दिव्य होता है, इसमें सन्देह नहीं।

'दिव्य' देवता-रूप होता है और 'वीर' उद्धत मन का होता है। पूर्वाम्नाय में विहित कर्म 'पाशव' कहे गये

हैं। दक्षिणाम्नाय के भी कर्म 'पाशव' हैं। पश्चिमाम्नाय के कर्म 'वीर' और 'पशु' दोनों भावों से मिश्रित होते हैं। ऊर्ध्वाम्नाय के कर्म 'दिव्य'-भावान्वित होते हैं।

दिव्य और वीर-भाव के कर्म गुप्त रखने से फल-दायक होते हैं। गोपनीयता का पालन करने पर ही देवता, गुरु और मन्त्र का प्रभाव प्रकट होता है। दिव्य औषधियों और वीरों के कर्म सभी गुप्त ही रखने चाहिये। उन्हें प्रकट करने से उनका फल नहीं मिलता।

कुलाचार की क्रिया रात्रि में और वैदिक क्रिया दिन में करनी चाहिये। वीर-भाव से दिन में पूजा न करे और पशु-भाव से रात्रि में पूजन न करे। अन्यथा वह पूजन न होकर अभिचार होता है। दक्षिणा काली का पूजन श्मशान में कुल-साधक को करना चाहिये क्योंकि श्मशान ही दक्षिणा काली का स्थान है। श्मशान साक्षात् सदाशिव-स्वरूप है। श्मशान दो प्रकार के हैं। योनि ही चिता कही गई है और वही महा-काली है तथा लिङ्ग को महाकाल ने शिव बताया है। इन दोनों के योग के बिना दक्षिणा काली फल नहीं देतीं। योनि को ही 'कला' कहते हैं। कला का पूजन करनेवाला दिव्य या वीर साधक इस संसार में सुख

भोग कर अन्त में निर्वाण—मोक्ष को प्राप्त करता है। पशु-भाव के साधक को कला-पूजन का अधिकार नहीं है। कला-पूजा दो प्रकार की है—१ गुप्त, २ प्रकट। गुप्त पूजा साधक को महा-निशा में निर्जन स्थान में करना चाहिये और प्रकट पूजा दिन में लोकाचार के अनुसार करना चाहिये। लोकाचार से ही कर्म का गोपन होता है।

सिद्धि का मूल 'गोपनीयता' ही है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी को कला और आसव के सहित कला का पूजन करना चाहिये। द्रव्य के अभाव में द्विजों को अनुकल्प से काम लेना चाहिये। कला का अनुकल्प है कला का चिन्तन। दिन में पाशव विधि से और रात्रि में कौलिक विधि से पुरश्चर्या आदि कर्म पशु या वीर-दिव्य-भावानुसार सम्पन्न करने चाहिये।

द्वितीय पटल

चर और अचर—यह सारी सृष्टि 'भग'-रूपा ही है। 'भग' ही भगवती दक्षिणा है, जो तीनों गुणों की ईश्वरी है। 'महत्' आदि सभी तत्त्व त्रिविध कहे गये हैं। हकारार्द्ध कला अति सूक्ष्मा है और योनि-मध्य-

स्वरूपा है। 'योनि' ही दक्षिणा काली है, जो ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मिका है। त्रिकोण में शिव, विष्णु और पितामह—तीनों देवता स्थित हैं। योनि के मध्य में कुल-सुन्दरी देवी कालिका निवास करती है। महाकाली ज्योति-रूपा, शुक्र-रूपा और प्रपञ्च को जन्म देनेवाली हैं। शुक्र से शिव-शक्ति के भेद से विश्व उत्पन्न होता है। शिव और शक्ति के भी दो प्रकार हैं—१ निर्गुण और २ सगुण। निर्गुणा ज्योतिष्पुञ्ज-स्वरूपा सनातनी परब्रह्म है। वही परम पुरुष है, जो महा-नील-मणि के समान उज्ज्वल कान्तिवाला है। ज्योति ही दक्षिणा काली है, जो दूर स्थित होते हुये भी प्रपञ्च को उत्पन्न करनेवाली है।

विपरीत-रता काली निर्गुणा है और सगुणा भी है। निर्गुण-रूप में वह अमा है और वही अनिरुद्ध-सरस्वती है। सगुण-रूप में वह सुर-गर्भ में महाकाल का निरूपण करनेवाली है। नारी-रूप धारण कर वही विश्व को जन्म देती है। विष्णु-माया महा-लक्ष्मी सारे विश्व को मोहित करती है।

शिव-शक्ति-मय तत्त्व से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। बहुत जन्मों के बाद शक्ति का ज्ञान मिलता है। शक्ति के ज्ञान के बिना निर्वाण नहीं मिलता। वह

शक्ति दक्षिणा काली सिद्ध-विद्या-स्वरूपा है। सभी सिद्ध-विद्याओं में प्रकृति-पुरुष दक्षिणा है। उन दोनों में परस्पर अविना-भाव-सम्बन्ध है। शिव शक्ति से युक्त रहता है और शक्ति शिव से युक्त रहती है। उन दोनों का योग ही तत्त्व है; दोनों के योग से ही चिन्तन होता है; दोनों का योग ही मन्त्र है और दोनों के योग से जप करना चाहिए। इन दोनों का ही मन्त्र भोग-मोक्ष-दायक महा-मन्त्र है।

भोग से सालोक्य आदि चारों मोक्ष प्राप्त होते हैं। अनिरुद्ध-सरस्वती काली महा-कल्प-तरु है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी भुक्ति एवं मुक्ति की वही एकमात्र कारण है। मन्त्र-तन्त्र-स्वरूपा वह काली गुरु के द्वारा आराधनीया है।

दक्षिणा काली के मन्त्र के जानने मात्र से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है। "क्रीँ"—यह एकाक्षरी सिद्ध-विद्या मन्त्रराज्ञी है। त्रिगुणा (क्रीँ क्रीँ क्रीँ), दो कूर्च (हूँ हूँ), दो लज्जा (ह्रीँ ह्रीँ) के साथ 'दक्षिणे कालिके' यह पद और पुनः पूर्वोक्त सात बीज लगाकर अन्त में वह्नि-वधू (स्वाहा) लगाने से विद्या-राज्ञी मन्त्र होता है, जो सर्व-मन्त्र-मय और जन्म-पालन-संहार की शक्ति रखनेवाला है।

ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु आदि सभी देवता इसके उपासक हैं। वेद, आगम और पुराणों में कल्याण-कारिणी कालिका की वन्दना की गई है। काम-पीठों में कालिका सब कामनाओं की पूर्ति करती हैं। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में जो भैरव हैं, वे सभी कालिका के पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं। गुरु-क्रम के अनुसार सङ्केत-मार्ग से जिसका अभिषेक नहीं होता, उसे विशेषतया पूजा-काल में अन्त्यज के समान त्याज्य समझना चाहिए।

उक्त मन्त्र के ऋषि भैरव, छन्द उष्णिक्, देवता अनिरुद्ध-सरस्वती, बीज ह्रीँ, शक्ति हुं, कीलक क्रीँ और विनियोग धर्मार्थ-काम-मोक्ष में है।

न्यास-जाल का वर्णन विविध तन्त्रों में किया किया है। न्यासों को कर वीर-भाव से साधक त्रिपञ्चार महा-पीठ योनि-पीठ का पूजन करे। भगवती काली का ध्यान निम्न प्रकार करे—

महा-मेघ की प्रभावाली श्याम-वर्णा भगवती काली का मुख कराल है, पयोधर पीनोन्नत हैं, चार भुजाओं में से बाईं ऊपरी भुजा में तुरन्त का कटा हुआ सिर और निचली भुजा में खड्ग है तथा दाईं ऊपरी भुजा में अभय-मुद्रा एवं निचली भुजा में वर

मुद्रा है। पचास वर्णात्मक मुण्डों की माला से टपकते हुये रक्त से उनका शरीर लिप्त है और उनकी चारों दिशाओं में शिवायें घोर कोलाहल कर रही हैं। उनकी कमर में शवों के कर-समूह से बनी मेखला है। वे दिगम्बरी हैं, केश खुले हुये हैं और मस्तक पर अर्द्धचन्द्र है। शव-रूप महादेव के हृदय पर वे स्थित हैं और महाकाल के साथ विपरीत-रतातुरा हैं। उनकी आँखें मदिरा-पान से चञ्चल हैं, मुख-कमल मुस्कान से युक्त है। महा-रौद्र-रूपवाली वे अट्टहास करती हुई सदा आनन्द करती रहती हैं।

श्मशान में रहनेवाली भगवती काली का इस प्रकार ध्यान कर वीर साधक निशा-काल में कुल-मन्दिर में पूजन करे। मानस पूजा कर कुल-पुष्प प्राप्त करे। मन में मन्त्र का स्मरण करे। कामाख्या में आवाहन की आवश्यकता नहीं। मन से भक्तिपूर्वक आराधना कर बाह्य-पूजा करे। यथा—

आत्म-शुद्धि और द्रव्य-शुद्धि के बाद अर्घ्य आदि पात्रों को सविधि स्थापित करे। तब पीठ-पूजा कर उसमें देवता का आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र, उपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, मधुपर्क, तर्पण, माल्यादि उपचारों से पूजन करे।

अन्त में पाँच पुष्पाञ्जलि देकर महा-काल द्वारा शोभित देवी की पुनः पूजा करे।

पीठ-मन्त्र के क्रम से किया हुआ पूजन ही श्रेष्ठ मार्ग है। आवरणों के बिना केवल मन्त्र यजन नित्य-पूजन है, जो मध्यम माना गया है। केवल पुष्पों से पूजन करना कनिष्ठ पूजन है।

आज्ञा प्राप्त कर आवरण-पूजन करना चाहिये। मूर्द्धा में कमला-मुकुट की और कानों में कुण्डलों की पूजा कर गुरु-पंक्ति का अर्चन करे। तब महा-काल की पूजा करे। महाकाल का ध्यान मूल में पृष्ठ ११ पर दिया है, जिसके अनुसार वे धूम्र-वर्ण के हैं, द्विनेत्र और शव-रूप हैं। शक्ति से युक्त निरामय हैं। घोर रूप वाले, नीलाञ्जन के समान प्रभावाले तथा दिगम्बर हैं, निर्गुण साथ ही गुणों के आधार हैं।

प्रथम त्रिकोण में काली-कपालिनी-कुल्ला का अर्चन कर पाँचवें त्रिकोण में मात्रा-मुद्रा-मिता देवियों की पूजा करे। अष्ट-दलों में पूर्वादि क्रम से ब्राह्मी, नारायणी, कौमारी, महेश्वरी, अपराजिता, चामुण्डा, वाराही और नारसिंहिका का अर्चन करे। चार द्वारों में असिताङ्ग-रुरु, चण्ड-क्रोध, भीषण-उन्मत्त और कपाली-संहारक इन दो-दो भैरवों का एक-एक द्वार

में क्रमशः पूर्वादि क्रम से पूजन करे। दसों दिशाओं में इन्द्रादि दिक्-पालों का अर्चन करे। बाएँ हाथ में खड्ग और मुण्ड का तथा दाएँ हाथ में अभय और वर का अर्चन करे। फिर सायुधा सवाहना देवी का पुनः पूजन कर मूर्द्धि में कुल्लुका का जप करे। तदनन्तर हृदय में सेतु का, कण्ठ-देश में महा-सेतु का, नाभि में योनि का चिन्तन करे।

'सेतु' प्रणव (ॐ) है, जिसे हृदय में स्थित ध्यान कर उसका पूजन करे। निज-बीज (क्रीँ) महा-सेतु है, जिसे कण्ठ-देश में ध्यान करे। सबिन्दु मातृका से युक्त नाभि-मध्य को ध्यान करे।

काली (क्रीँ), कूर्च (हूँ), वधू (स्त्रीँ), माया (ह्रीँ) फट्—यह पञ्चाक्षरी भगवती कालिका की कुल्लुका है। तारा की कुल्लुका महा-नील-सरस्वती है। अन्य देवियों की कुल्लुका वधू-बीज (स्त्रीँ) है।

काली-कुल के साधकों को इसी प्रकार पूजा करनी चाहिये। १०८ बार मन्त्र का जप कर महाकाल और भगवती का पुनः पूजन करे। तब कवच और स्तोत्र का पाठ करे।

तृतीय पटल

भगवती काली के दिव्य कवच का यत्न-पूर्वक जो

पाठ करता है, उसके पास से भूत-प्रेत-पिशाचादि दूर भाग जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं। यह स्तोत्र पृष्ठ १३ में 'श्री देव्युवाच—भगवन् ! सर्व-देवेश०' से लेकर पृष्ठ १४ के '...सत्यं सत्यं न संशयः' तक पठनीय है।

पृष्ठ १४ में 'श्री देव्युवाच—शङ्करो यां स्तुति०' से लेकर पृष्ठ १५ के '...नात्र कार्या विचारणा' तक भगवती कालिका का स्तोत्र दिया गया है, जिसका पाठ करने से साधक सब प्रकार से कृतार्थ हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

चतुर्थ पटल

मानसी पूजा उत्तम है, बाह्य पूजा कनिष्ठा है। पूजा से पूज्यता मिलती है और जप से सिद्धि, इसमें सन्देह नहीं। होम से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। अतः इन तीनों को करना चाहिये। वीर और दिव्य साधकों के लिये मानसी पूजा है।

आसनों और नाड़ियों का रहस्य जाने बिना पुरश्चर्या नहीं होती। १ आसन, २ प्राणायाम, ३ प्रत्याहार, ४ धारणा, ५ ध्यान और ६ समाधि— ये योग के छः अङ्ग हैं। ८४ लाख जीव-जन्तु हैं और उतने ही आसन हैं। उनमें से दो हैं—१ सिद्धासन, २ कमलासन। नाड़ियाँ सहस्रों हैं, जिनमें दस प्राण-

वाहिनी मुख्य हैं—१ इड़ा, २ पिङ्गला, ३ सुषुम्ना, ४ गान्धारी, ५ हस्ति-जिह्वा, ६ पूषा, ७ यशस्विनी, ८ अलम्बुषा, ९ कुहु और १० शङ्खिनी। इड़ा और पिङ्गला के मध्य में सुषुम्ना है। ये त्रिगुणा और ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका हैं। रजोगुणा का नाम ध्वजा है, सत्व-गुणा चित्रिणी और तमोगुणा का नाम ब्रह्म-नाड़ी कार्य-भेदानुसार है। इन तीनों के देवता क्रमशः सोम (चन्द्र), सूर्य और अग्नि हैं। इड़ा नाड़ी बाईं ओर है और पिङ्गला दाईं ओर। इन दोनों के मध्य में सुषुम्ना चन्द्र-सूर्य के भेद से है।

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि-देश में समान, कण्ठ-देश में उदान और सारे शरीर में व्यान वायु है। नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये पञ्च-वायु हैं। ये सभी समस्त नाड़ियों में वर्तमान हैं। जिस प्रकार गुणों से बँधा हुआ जीव प्राण-अपान से कर्षित होता है, उसी प्रकार प्राण अपान को और अपान प्राण को कर्षित करता है। इन दोनों को ऊपर और नीचे स्थित जो जानता है, वही योग का ज्ञाता है।

हंस की गति प्रकृति है और ॐकार प्रकृति का गुण है। हकार से बाहर जाता है और सकार से पुनः प्रवेश करता है। इस प्रकार हंस परम मन्त्र है, जिसे

जीव सदा जपा करता है। दिन-रात में २१ हजार छः सौ बार जीव इस मन्त्र का जप करता है। यही अजपा नाम की गायत्री है, जो योगियों को मोक्ष देनेवाली है।

अजपा गायत्री के दो प्रकार हैं—१ व्यक्ता, २ गुप्ता। व्यक्ता के दो प्रकार हैं, जो हृदय में स्थित हैं। ठकाराकार से गुप्ता शिव-शक्ति कही जाती है। ठकार चन्द्र-वीज है और अजपार्थ-मयी को वह्निजाया कहते हैं। इसका सङ्कल्प मात्र पुरश्चरण कहा जाता है।

बारह प्राणायामों से प्रत्याहार होता है। सहस्र प्रत्याहार से धारणा होती है। बारह धारणाओं से ध्यान कहलाता है। बारह ध्यानों से समाधि होती है। समाधि के परे जो अनन्त ज्योति विश्व में व्याप्त है, उसे देख लेने पर कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रहती।

भ्रू-मध्य में प्रतिष्ठित ज्योति का चिन्तन करना ही योगियों को सर्व-श्रेष्ठ पूजा है। ज्योतियों की मूर्ति-रूपा कालिका का ध्यान हृदय में करना चाहिये। ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होनेवाले चर्व्य-चोष्यादि द्रव्यों, फल पुष्प, गन्ध, वस्त्र और आभूषणादि को मानसिक रूप से कालिका को बारम्बार अर्पित करना चाहिये।

पेय द्रव्यों को समुद्र की मात्रा में और खाद्य पदार्थों को पर्वत की मात्रा में कालिका के लिये प्रदान करना चाहिये। यही मानस-पूजन है। दिव्य भाव से निर्वाण की और वीर-भाव से समानता की प्राप्ति होती है।

अपने आम्नाय को जानकर पुरश्चरण करना चाहिये। उत्तराम्नाय में सारा काली-कुल है और श्रीकुल सभी आम्नायों में क्रमशः उदय हुआ है। उत्तराम्नाय में त्रिपुरसुन्दरी भैरवी विद्या है और पश्चिमाम्नाय में मातङ्गी है। दक्षिणाम्नाय में ये दोनों हैं। पूर्वाम्नाय में धूमावती, त्वरिता, त्रिपुरा और बगला प्रतिष्ठित हैं।

दक्षिणाम्नाय में कथित देवियों की पशुओं द्वारा सदा पूजा की जाती है! काली (क्रीँ), कूर्च (हूँ), वधू (स्त्री), जाया (स्वाहा), प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐँ) और शूल-हस्ता शुभ विद्या उत्तराम्नाय में उदित हुई है। दक्षिणाम्नाय में बाईस अक्षरवाली विद्या प्रतिष्ठित है।

दिन-रात में मिलाकर दो लाख बार मन्त्र का जप करना चाहिये। दिन में हविष्य-भोजन कर सदा पवित्र रहते हुये एक लाख जप करे। जप का दशांश अग्नि में होम करे और होम का दशांश तीर्थ-जल से तर्पण करे। तर्पण के दशांश द्विजों को हविष्यन्ना-

भोजन कराये। यह पाशव कल्प अर्थात् पशु-भाव के साधकों के लिये विधान है।

वीर भाव का साधक रात्रि का एक प्रहर बीतने के बाद अपने 'कुल' का ध्यान करे। सुशीला कुल-भक्ता कान्ता को कुलार्चन में लाकर उसके मस्तक पर द्विधा शक्ति-चक्र को अङ्कित करे। उसके शिव-कोण में कामकला को और मध्य में श्री-बीज से युक्त इष्ट-मन्त्र को लिखे। वहीं इष्ट-देवी का ध्यान कर उसकी पूजा करे। तदनन्तर शक्ति के बाएँ कान में ऋषि-छन्द युक्त मूल-मन्त्र को तीन बार सुनाये और यह कहे कि—हे देवि! आज से तुम कुल-देवता का अर्चन करो। गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं कुलार्चन में प्रवृत्त होता हूँ।

इसके बाद कुलागार में कुल-चक्र अङ्कित कर कुल द्रव्यों से भक्ति-पूर्वक पूजा करे। वहाँ आवाहन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह देवी-स्वरूपा है। यथाविधि पूजा कर साधक तत्त्व-चिन्तन में लीन हो जाय और एक लाख बार जप करे। जप के दशांश मांस-युक्त आसव से अग्नि में होम करे। होम का दशांश तीर्थ-जल से तर्पण कर तर्पण के दशांश द्विजों को कुल-द्रव्यों का भोजन करावे।

पुरश्चरण-काल में यदि शक्ति की पूजा नहीं की जाती, तो सारी पूजा, जप और होमादि व्यर्थ होता है। अतः सभी प्रयत्न करके शक्तियों की पूजा करे। शक्तियों, कुमारियों और कुल-धर्मी द्विजातियों को कुल-द्रव्य के भोजन से बार-बार सन्तुष्ट करना चाहिये। अन्त में सम्प्रदाय के ज्ञाता को गुरु-दक्षिणा देनी चाहिये। वस्त्रालङ्कार आदि से कुल-गुरुओं को सुशोभित करे और उनके पुत्र, पुत्री वा पत्नी की भी परम भक्ति से पूजा करे।

पञ्चम पटल

रजनी देवी ऐसी शक्ति है, जो लोभ-हीना, कामना-रहिता, लज्जा-विहीना, द्वन्द्व-मुक्ता, सात्विक-भावा, पतिव्रता और स्वेच्छा से विपरीत-रता होती है। ऐसी ही देवी तीनों लोकों में गोपनीया और कुल-मार्ग से स्व-पूजनीया है। दोनों नेत्रों के अन्दर भौंहों के अन्तः में प्रतिष्ठिता ज्योति से भी परम ज्योति उसके कुल-मन्दिर में प्रतिष्ठित है। साधक को देखकर मानसिक क्रीड़ा से जो अमृत-पात होता है, उसी अमृत से मूल-मन्त्र से स्वयं रजनी देवी का तर्पण करे। कुलागार में कुल-नाथ को स्थापित कर शिव का ध्यान करे और श्वासोच्छ्वास में ब्रह्म-रूपा

अजपा-गायत्री का जप करे। दिन में ब्रह्म-विद्यात्मिका परा गायत्री का जप न करे अन्यथा इस लोक में दुःखी होकर नरक को जाता है। सङ्केत का जानने वाला एक-चित्त होकर कलानाथ की साधना रजनी-मूल-योग से करता है और निर्वाण-पद को प्राप्त करता है।

धन, काम या लोभ से जो निज मन्दिर में उक्त पूजा को करता है, वह घोर नरक को प्राप्त करता है। सङ्केत के पक्के जानकार से जानकर साधना करने से वह कल्याणकारी होती है अन्यथा दुःख ही मिलता है।

भूख-प्यास से पीड़ित दशा में कालिका का पूजन कभी न करे। अन्यथा देवी क्रुद्ध होती हैं। साधक में क्षोभ होने से देवी भी क्षुब्ध होती हैं। अतः खा-पीकर कल्याण-कारिणी कालिका की पूजा करे। बिना सुरा पिए और बिना मत्स्य-मांस का भोजन किये, जो दक्षिणा काली का जप करता है, उसे पग-पग पर कष्ट होता है। दिव्य और वीर-भाव के बिना काली की पूजा करने से नरक मिलता है। कलियुग में लता और आसव के बिना काली-पूजा नहीं करनी चाहिये। लता के दर्शन मात्र से कालिका का दर्शन होता है।

सुन्दरी शक्ति को देखकर उसी में काली का ध्यान करना चाहिये।

शून्य गृह, श्मशान या निर्जन वन, नदी के किनारे या पर्वत पर शक्ति का पूजन अकेले ही निर्भय होकर करना चाहिये। गुरु के सिवा अन्य किसी को साथ न रखे। अन्य को साथ रखने से धन की हानि होती है और सब कुछ नष्ट होकर नरक को प्राप्ति होती है।

पूजा द्रव्यों को यदि पशु देख ले, तो उन्हें जल में विसर्जित कर इष्ट-देवता का ध्यान करे। धूर्त, शठ, चुल्लुक, मूर्ख और दम्भी को पशु कहते हैं। कुल-पूजा, कुल-द्रव्य, कुल-स्त्री और कुल-मङ्गल को गुप्त रखना चाहिये। कलियुग में मोक्षार्थी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को कुल-योग से पञ्च-तत्त्वों द्वारा काली की पूजा करनी चाहिये।

पान में जिसे भ्रान्ति हो और रक्त-रेतस में जिसे घृणा हो, उस पापी को पाप-हारिणी काली की पूजा नहीं करनी चाहिये। काली, तारा, छिन्नमस्ता, त्रिपुरा और भैरवी की पूजा द्विज को सदा कला और आसव के योग से करनी चाहिये। श्मशान-भैरवी, उग्रतारा, पञ्चमी, मातङ्गी, धूम्रा, वगला, भुवनेश्वरी, राज-राजे-

श्वरी, बाला, त्वरिता और महिष-मर्दिनी—ये कलियुग में आसवादि के द्वारा पूजनीया हैं।

ब्राह्मण वीर-भाव से सुरा-पान कर मन्त्र जप करे। सुरा के अभाव में द्विज गो-क्षीर प्रदान करे। द्रव्यों के अभाव में अनुकल्पों द्वारा पर-देवता की पूजा करे। कर्म का लोप न करे। वीर-भाव से चक्रार्चन गुरु के साथ करे। गुरु के अभाव में भाइयों के साथ सविधि चक्र-पूजा करे। पृथक् पात्र में पान करे और पृथक् पात्र में भोजन करे। शक्ति-सहित बैठे। शक्ति का उच्छिष्ट मद्य पान करे और वीरों के उच्छिष्ट का चर्वण करे। अपने बड़ों के उच्छिष्ट को ही खाना चाहिये, छोटों के उच्छिष्ट को नहीं। स्व-शक्ति के बिना अन्य शाक्त के उच्छिष्ट का पान करने से घोर नरक में गिरना पड़ता है। एक ही आसन पर बैठने से या एक ही पात्र में भोजन करने से या एक दूसरे का स्पर्श करने से नरक की प्राप्ति होती है। वीर या दिव्य साधक भी यदि वीर-चक्र में एक आसन पर बैठ कर यह सुधा-पान करते हैं, तो घोर नरक में जाते हैं। महा-सिद्ध भी परस्पर खाते-पीते हैं, तो उनकी सिद्धि नष्ट होती है और नरक को प्राप्त करते हैं, यह निश्चित है। बिना शक्ति के द्रव्य

का पान करने से गुरु-परायण वीर भी घोर नरक को जाता है। अतः शक्ति का अभाव हो, तो उस द्रव्य को जल में विसर्जित कर दे। गुरु के अभाव में उनके भाग को भी जल में निवेदित करना चाहिये।

षष्ठ पटल

श्री देवी ने पूछा कि 'रजनी-पूजा से शीघ्र सिद्धि कैसे मिलती है ?'

उत्तर में श्री शिव ने कहा कि 'हे देवि ! लोक-संशय को दूर करनेवाला तथ्य बताता हूँ, जिसका ज्ञान होने मात्र से जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है। उक्त तथ्य यह है कि सारी स्त्रियाँ तुम्हीं हो और सारे पुरुष मैं हूँ। इस ज्ञान को अनुभव करनेवाले साधक ही सिद्धि पाते हैं। निशीथ-काल में बलि प्रदान कर विधि-पूर्वक रजनी-पूजा करने से शीघ्र सिद्धि मिलती है, इसमें सन्देह नहीं।'

सप्तम पटल

अभिषेक दो प्रकार के हैं, एक राजाओं के लिये और दूसरा ज्ञानियों के लिये। राजाभिषेक में वैदिकादि क्रिया होती है और ज्ञानियों के अभिषेक में सर्व-तन्त्रों में गुप्त कुल-चक्र के क्रमानुसार अभिषेक किया जाता है, जो सब प्रकार की शान्ति करनेवाला एवं सभी

रोगों को दूर करनेवाला है।

पूर्णाभिषिक्त ही अभिषेक-कर्म में गुरु होता है। वह वैष्णव, गाणपत्य, सौर और शैव सभी का अभिषेक कर सकता है। अभिषेक प्राप्त करने से विप्र ब्रह्मत्व को, क्षत्रिय विप्रत्व को, वैश्य क्षत्रियत्व को और शूद्र वैश्यत्व को प्राप्त करता है। अभिषिक्त ब्राह्मण सुरा-पान का अधिकारी होता है।

आगम पाँचवाँ वेद है और शिव पाँचवाँ वर्ण है क्योंकि इसमें सिद्ध-विद्या का जप किया जाता है। अभिषेक-प्राप्त साधक को कुल-पूजा करनी चाहिये। कुल-पूजा करनेवाला पितृ-भूमि का आश्रय ग्रहण कर सदा अकेले विहार करे। वहाँ उसे देवताओं को भी दुर्लभ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

कुलाचार के बिना मन्त्र-तन्त्र सिद्ध नहीं होते। सिद्ध-विद्या कुलागार में निश्चय ही शीघ्र सिद्ध होती है। सुरा-पान कर कुलागार में विशेषकर विद्या का जप करे। सुरा के अभाव में विजया को निवेदन करे। आनन्द के बिना देवता तनिक भी तृप्त नहीं होतीं। कामाख्या में काली का अर्चन विशेषतया पञ्चम तत्व से करे। कामाख्या में काली विशेष रूप से सिद्धि प्रदान करती हैं।

कुलाचार के बिना काली का मन्त्र सिद्ध नहीं होता और अभिषेक के बिना जो कुल-कर्म करता है, उसकी पूजादि क्रियायें व्यर्थ होती हैं। अभिषेक के बिना जो किसी को सिद्ध-विद्या प्रदान करता है, वह अनन्त काल घोर नरक में निवास करता है।

अभिषेक से ब्रह्मत्व, हरित्व और शिवत्व प्राप्त होकर सब सिद्धियों का स्वामित्व प्राप्त होता है। दिव्य और वीर साधक कुल-भक्ति-परायण होकर मोक्ष-प्राप्ति के लिये अभिषेक कराये। अधिवास, वृद्धि-श्राद्ध, शिव-शक्ति-पूजन, गुरु-पूजन कर सङ्कल्प-विधि से गुरु का वरण करे। तदनन्तर पञ्च-तत्वों से अलग-अलग देवी का पूजन करे। सद्‌गुरु और देवी को प्रणाम कर गुरु-पूजन-पूर्वक देवी के ध्यान में मग्न होकर पवित्र देश में, शून्य-गृह में, नदी किनारे, विल्व-वृक्ष के नीचे, निर्जन पितृ-कानन में, गाँव में या देव-मन्दिर में साधना के लिये स्थान निश्चित करे।

अष्टम पटल

शिव और शक्ति का पूजन कर सोने या चाँदी के उत्तम घट की स्थापना विशेषार्घ्य के यन्त्र या त्रिकोण के ऊपर करे। घट न बहुत छोटा हो और न बहुत बड़ा। 'क्लीं' से प्रोक्षण और 'ऐं' से ताड़न कर 'ह्रीं'

से जल भरे। 'ॐ गङ्गाद्याः·········कुर्वन्तु सन्निधिं—इस मन्त्र से उसमें तीर्थों का आवाहन करे। 'श्रीं' से अभिमन्त्रित पल्लव उस पर स्थापित करे और 'हूँ' से फल प्रदान कर 'स्त्रीं' से उसे स्थिर करे। 'हूँ' से सिन्दूर, हसौः' से पुष्प, मूल-मन्त्र या 'ॐ' से दूर्वा अर्पित करे। अन्त में 'हूँ फट् स्वाहा' से दर्भ (कुशा) द्वारा उसका ताड़न करे। तब उसमें देवी-पीठ की भावना कर उस पर आवाहन कर पूजन करे। इसी प्रकार सभी कर्मों में, विशेष कर षट्-कर्मों में, घट की स्थापना कर पूजा करनी चाहिये।

सोलह उपचारों से महा-पूजा करे। गुरुओं, शक्तियों, साधकों और कुल-धर्मी परिवार की कुमारियों का पूजनकर उन्हें भोजन कराए। तब गुरु के निर्देशानुसार अभिषेक करे। पहले 'उत्तिष्ठ कलस·········मनोरथं' इस मन्त्र से घट को सञ्चालित करे। फिर गुरु शिष्य का और पुरोहित यजमान का अभिषेक करे।

दुष्ट ग्रह-बाधा का निवारण करने के लिये पीपल के पत्तों से, भूत-प्रेत के कष्ट-निवारण हेतु गूलर के पत्तों से, यश प्राप्ति के लिये करवीर से, सब पापों के नाश के लिए तुलसी की मञ्जरी से, सभी तीर्थों का पुण्य पाने के लिए बिल्व-पत्रों से, स्त्री-कृत दोषों को

दूर करने के लिये दर्भों से, स्त्रियों के असौभाग्य-निवारण हेतु दूर्वा से और सभी कार्यों की सिद्धि के लिए दूब या आम्र के पत्तों से अभिषेक करना चाहिये।

पृष्ठ ३८ पर उल्लिखित 'अस्याभिषेकस्य ······ सिद्धयर्थे विनियोगः'—इस विनियोग-मन्त्र से जल छोड़कर पृष्ठ ३६ पर प्रारम्भ 'ॐ राज-राजेश्वरी···' से पृष्ठ ४३ तक दिये '······पूर्णाः सन्तु मनोरथाः'—इन मन्त्रों द्वारा घटस्थ जल से शिष्य या यजमान के शिर का सिञ्चन करे।

इस प्रकार अभिषेक कर पुनः पूजन करे। शिष्य भी पूजा कर गुरु को गाय, भूमि, सोना-चाँदी, नाना रत्नादि, अपना पूरा या आधा सर्वस्व दक्षिणा के रूप में प्रदान करे।

अन्त में शिष्य गुरु को दण्डवत् प्रणाम कर उनसे पूछे कि 'हे गुरुदेव ! मैं क्या करूँ, यह बताइए।'

उत्तर में गुरु यह बताए कि 'हे पुत्र ! तुम कुलाचार को सदा गुप्त रखना। अपनी शक्ति को कौलिकी बनाकर उसमें पूजा की भावना करना।'

सिद्ध साधक को सदैव मन और शरीर से शक्ति का अर्चन करना चाहिये। पर-स्त्री का विशेष रूप से

पूजन करना चाहिये। यह कुल-मर्म गुरुओं द्वारा बताया गया है। जब तक सिद्धि प्राप्त न हो, साधक को अपने ही कुल का अनुसरण करना चाहिये।

नवम पटल

श्री देवी ने पूछा कि 'हे महादेव! किस कर्म से साधक सिद्ध मन्त्रवाला होता है?'

श्री शिव ने बताया कि 'कुलार्चन में कुल-भक्ता शक्ति को लाकर उसके मस्तक पर कामकला एवं इष्ट-मन्त्र को लिखे और वहाँ देवी का आवाहन कर पूजन करे। फिर एक लाख मन्त्र जप कर शक्ति के बाएँ कान में ऋषि-छन्द-सहित मूल-मन्त्र को तीन बार सुनाकर उससे कहे कि 'आज से तुम मेरी शक्ति हो, कुल-देवता का अर्चन किया करो।' उत्तर में शक्ति कहे कि 'गुरु की आज्ञानुसार घृणा-लज्जा से दूर रह कर मैं शिवोक्त विधि से कुलार्चन को करूँगी।'

इसके बाद प्रथम प्रहर के बीतने के बाद रात्रि में स्व-शक्ति के शैय्यासीन होने पर उसके वाम भाग में बैठकर अपने मस्तक पर मूलमन्त्र के मध्य में शक्ति-नाम की भावना कर अनुलोम-विलोम से जप करने से शक्ति का आकर्षण होता है। जब तक आकर्षण की सिद्धि न हो, तब तक यह प्रयोग करता रहे। सिद्ध

हो जाने पर कुलाचार से पर-स्त्री का पूजन और श्मशान-पूजा करे। आकर्षण-सिद्धि होने से साधक शिव-स्वरूप होता है और निर्वाण को प्राप्त करता है।

दशम पटल

श्री देवी ने पूछा कि 'किस प्रकार की कुलीना शक्ति की पूजा ब्राह्मण को सदा करनी चाहिए ?'

श्री शिव ने बताया कि 'योगी लोग सभी जाति की शक्तियों की सदा पूजा करते हैं। पुरश्चरण कर चुकनेवाले वीर साधक ही वीर-साधना करने के अधिकारी हैं। बिना पुरश्चरण किए कुल-साधन नहीं करना चाहिए। अन्यथा सिद्धि नष्ट होती है और घोर नरक में जाना पड़ता है।'

वीर-शक्ति के बिना कुल-साधना नहीं करनी चाहिए। उसके अभाव में हीन जाति की शक्तियाँ प्रशस्त होती हैं। चक्र पाँच प्रकार के हैं—१ राज-चक्र, २ महा-चक्र, ३ देव-चक्र, ४ वीर-चक्र और ५ पशु-चक्र।

उक्त चक्रों में किन उपचारों से पूजन करना चाहिए और किन नियमों का पालन करना चाहिए, इसे बताकर स्पष्ट किया है कि वीर-चक्र में मन्त्र की सिद्धि प्राप्त होती है। यह चक्र दोनों पक्षों की चतुर्दशी

तिथि और अमावास्या में किया जाता है।

एकादश पटल

श्री शिव ने कहा कि आत्म-ज्ञान होते ही तत्व का ज्ञान हो जाता है और तत्त्व-ज्ञानी ही योगी कहा जाता है। यह योगी तीन प्रकार का है—१ निरालम्ब, २ सालम्ब और ३ भक्त। ये सभी योग-परायण होकर शक्ति का ही पूजन करते हैं। अभिषेक द्वारा योगी पृथ्वी पर भैरव-रूप होता है। वीर और दिव्य साधक अवधूत होते हैं।

अवधूत के लक्षण और कर्तव्यों का वर्णन कर साधिका के लक्षण और उसकी पूजा की विधि बताते हुए पुरश्चरण का विधान बताया है।

द्वादश पटल

इस पटल में पुनः शक्ति-पूजा की विधि बताई है और यह निर्देश किया है कि कुल-पूजा पशु-भाव वालों के समक्ष प्रकट न करना चाहिए तथा पशु व्यक्ति से किसी भी प्रकार का सम्पर्क न रखना चाहिए अन्यथा सिद्धि की हानि होती है।

त्रयोदश पटल

इस पटल में काली, तारा, श्री विद्या और छिन्न-मस्ता—इन सिद्ध-विद्याओं की साधना में प्रशस्त

शक्तियों का उल्लेख किया गया है। साथ ही शक्ति-साधना के कुछ प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

चतुर्दश पटल

इस पटल में सात प्रकार की वेश्याओं का परिचय देकर उनके पूजन का महत्व दिखाया है।

पञ्चदश पटल

इस अन्तिम पटल में पञ्चमकारों का नामोल्लेख कर उनके शोधन की विधि बताई है। यथा—

श्री देवी ने कहा कि 'हे कुल-मार्ग के प्रकाश करनेवाले महा-देव! 'पञ्चम' द्रव्य किस प्रकार हैं और उनकी शुद्धि कैसे होती है? हे नाथ! मुझ पर कृपा करें और इसे प्रकट करें।'

उत्तर में श्री शिव ने कहा कि '१ मद्य, २ मांस, ३ मीन, ४ मुद्रा और ५ मैथुन—यह 'पञ्चम' है। मन्त्र-कोष के क्रम से इनकी शुद्धि की विधि बताता हूँ।

अर्द्ध-रात्रि के समय अपने वाम भाग में मुक्त-केशा शक्ति को बैठाकर उसके शरीर में क्रमानुसार न्यास कर अपने शरीर में न्यास करे। फिर भूत-शुद्धि कर वर्ण-न्यास, अङ्ग-न्यास, कर-न्यास, लिपि-न्यास, अन्तर्मातृका न्यास, प्राणायाम, ऋष्यादि-न्यास, पीठ-न्यास और व्यापक-न्यास काली-कुल के पूजन में

क्रमशः करे। क्रम में गड़बड़ न करे, अन्यथा जप-पूजादि सभी कर्म निष्फल होते हैं।

महा-काली का ध्यान कर उनका मानसोपचारों से पूजन करे। तब अपनी बाईं ओर विन्दु-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्त्र और चतुर्द्वार-युक्त भूपुर अङ्कित कर सामान्यार्घ्य के जल से उसका अभ्युक्षण करे। फिर 'नमः' से आधार (त्रिपदिका) को धोकर उस यन्त्र पर रखकर आधार के ऊपर प्रथम तत्त्व 'मद्य' के घट को स्थापित करे। आधार पर अग्नि की दस कलाओं की सविधि पूजा गन्ध-पुष्पादि से करे। आठों दिशाओं में सूर्य की बारह कलाओं की पूजा कर घट को लाल वस्त्र से लपेटे। मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए घट को 'मद्य' से पूर्ण करे। तदनन्तर घटस्थ 'मद्य' में चन्द्र को सोलह कलाओं का पूजन कर पञ्च-मुद्राओं से प्रणाम करे। १ चतुरस्त्रा, २ सम्वृता, ३ सम्पुटा, ४ पुटाञ्जलि और ५ योनि—ये पञ्च-मुद्रायें हैं।

चतुरस्त्रा और सम्वृता मुद्राओं में 'ह्रीं नमः' मन्त्र से, सम्पुटा-मुद्रा में 'क्लीं नमः' मन्त्र से, पुटाञ्जलि-मुद्रा से 'हूं नमः' मन्त्र से और योनि-मुद्रा में 'सः नमः' मन्त्र से प्रणाम करना चाहिए।

घट के समीप चन्दन से त्रिकोण-वृत्त-भूपुर का यन्त्र बनाकर उस पर सर्व-पथिक की पूजा कर उस यन्त्र पर बलि स्थापित कर बाएँ हाथ की तत्त्व-मुद्रा को बलि-द्रव्य के ऊपर मूलमन्त्र से तीन बार घुमाकर 'ह्लीं ह्लीं ह्लीं सर्व-पथिकाभ्यो नमः' से उक्त बलि को प्रदान करे।

फिर मद्य को कुशा द्वारा अस्त्र मन्त्र (फट्) से १ ताड़ित करे। बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को नीचे कर उससे मद्य को तीन बार २ वेष्टित करे। मूल-मन्त्र से मद्य का ३ वीक्षण करे (देखे)। 'फट्' से मद्य का ४ अभ्युक्षण करे और मूल-मन्त्र से तीन बार मद्य का ५ आघ्राण करे (सूँघे)। यह पञ्चीकरण-क्रिया है।

अब घट में प्रणव (ॐ) से पुष्प छोड़कर भावना से उसमें त्रिकोण अङ्कित कर उसके मध्य में 'हसौः हसौः हसौः नमः' से तीन बार पूजन करे। पुनः 'ॐ वाम-देवाय वौषट्' मन्त्र से वहीं वामदेव का पूजन कर 'ॐ हूं पशपतये हूं हूं फट्' से पशुपति की पूजा करे। तब घट के ऊपर निम्न मन्त्र दस बार जपे—

ऐं क्लीं देवि स्वामिनि परा-कोष-गता देवी शून्य-

वाहिनी चन्द्र-सूर्याग्नि-भक्षिणी पात्रं हूं हूं स्वाहा।

इसके बाद—'ऐं ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे धीमहि'—इस गायत्री-मन्त्र का तीन बार जप करे। फिर तीन ऋचाओं का जप कर शाप-मोचन करे—

ॐ रां रीं रूं रैं रौं क्रौं क्रौं क्रः स्वधा कृष्ण-शापं मोचय मोचय अमृतं स्त्रावय स्त्रावय स्वाहा—इस मन्त्र का जप १२ बार कर निम्न मन्त्रों का घट के ऊपर तीन-तीन बार जप करे—

१-ॐ एक एव परं-ब्रह्म स्थूल-सूक्ष्म-मयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्म-हत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्॥

२-ॐ सूर्य-मण्डल-सम्भूते वरुणालय-सम्भवे!
अमा-वीज-मये देवि! शुक्र-शापाद् विमुच्यते॥

३-ॐ देवानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्द-मयं यदि।
तेन सत्येन मे देवि! ब्रह्म-हत्यां व्यपोहतु॥

अब निम्न मन्त्र का तीन बार जप करे—

ह्रीं श्रीं क्रूं श्रीं शोभिनि विकारानस्य द्रव्यस्य हर हर स्वाहा।

फिर 'द्रीं श्रीं ऐं' इस प्रकाशिनी-मन्त्र का तीन बार जप कर तिरस्करिणी देवी का ध्यान करे। यथा—

नीलं हयं समधिरुह्य पुरः प्रयान्ती,
नीलांशुकाभरण-माल्य-विलेपनाढ्या।

निद्रा-पटेन भुवनानि तिरोदधाना,
खड्गेन भुजैर्भगवती परिपातु भक्तान् ।

अब तिरस्करणी देवी के मन्त्र का तीन बार जप करे। यथा—ह्रीं क्लीं ऐं श्रौं तिरस्करिणी सकल-जन-वाग्वादिनि सकल-पशु-जन-मनश्चक्षु-श्रोत्र-जिह्वा-घ्राणोक्ति-तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा ।

तब निम्न मन्त्र का तीन बार जप करे—

पवमानः परानन्दः परिमाणः परो रसः ।
पवमानं परं ज्ञानं ज्ञेयं त्वां पावयाम्यहम् ।।

अब वायु-बीज 'यं' से शोधन, वह्नि-बीज 'रं' से दाहन कर, शोधित मद्य को प्रणाम करे।

१ काली, २ तारा, ३ षोडशी, ४ भुवनेश्वरी, ५ भैरवी, ६ छिन्नमस्ता, ७ धूमावती, ८ बगला, ६ मातङ्गी और १० कमला—ये दश महा-विद्यायें सिद्ध-विद्यायें कही गई हैं।

अन्त में कहा है कि तन्त्र में १८ महा-विद्याएँ बताई हैं—१ काली, २ तारा, ३ छिन्नमस्ता, ४ मातङ्गी, ५ भुवनेश्वरी, ६ अन्नपूर्णा, ७ नित्या, ८ दुर्गा, ६ महिष-मर्दिनी, १० त्वरिता, ११ त्रिपुरा, (त्रिपुटा), १२ भैरवी, १३ बगला, १४ धूमावती, १५ कमला, १६ सरस्वती, १७ जय-दुर्गा और १८

त्रिपुर-सुन्दरी। इन महा-विद्याओं के मन्त्र की दीक्षा लेने और उपासना करने में दिन, तिथि, नक्षत्र आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

उपसंहार

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस नवीन संस्करण में 'निरुत्तर तन्त्र' के पटलों का जो सारांश यथा-सम्भव विस्तार से दिया गया है, उससे प्रकट है कि इसमें कौल-साधना के उच्च कोटि के गूढ़ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जिन्हें मर्मज्ञ सद्-गुरु की कृपा प्राप्त कर ही संयमी तथा विवेकी व्यक्ति, जो कि साधना-मार्ग के अधिकारी हैं, समझ सकते हैं। इस तन्त्र में वर्णित विषयों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसी प्रकार के अन्य तन्त्रों, जैसे कुलार्णव तन्त्र, महानिर्वाण तन्त्र, काली-तन्त्र, शक्ति-सङ्गम तन्त्र आदि का भी ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया जाय। तन्त्र के संग्रह-ग्रन्थों जैसे तन्त्रसार-शाक्तानन्द-तरङ्गिणी, कौलावली-निर्णय आदि से रहस्यात्मक विषयों के समझने में विशेष सहायता मिलती है।

प्रयाग —कुल-भूषण

भाद्र पूर्णिमा, २०३६

प्रथमः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

सिद्ध-विद्या पुरा प्रोक्ता मन्त्र-यन्त्रादिकानि च।
नाना-भाव-प्रभेदेन संशयो जायते प्रभो॥
भाव-भेदेन कथय लोक-निस्तार-कारक!
सर्वेषां शरणं तन्त्र-सिद्धान्तं विष्णु-सम्मतम्॥
आसामाराधना केन भावेन परिजायते?
आसां वा प्रकृतिः कापि तस्या वा कीदृशी क्रिया?
तत्प्रकाशय सम्यङ् मे येन यामि निरुत्तरं॥

श्रीशिव उवाच—

सर्वासां सिद्ध-विद्यानां प्रकृतिर्दक्षिणा प्रिये!
दिव्यैर्वा वीर-भावैर्वा चिन्तयेद् दक्षिणां शुभां॥
दिव्य-भावैश्च वीरैश्च काली-कुलं विचिन्तयेत्।
श्री-कुलं च त्रिभिः सर्वैश्चिन्तयेत् कुल-सुन्दरि॥
काली तारा रक्त-काली भुवना महिष-मर्दिनी।
त्रिपुटा त्वरिता दुर्गा विद्या प्रत्यङ्गिरा तथा॥
काली-कुलं समाख्यातं श्री-कुलं च ततः परं।
सुन्दरी भैरवी बाला बगला कमलापि च॥

धूमावती च मातङ्गी विद्या स्वप्नावती प्रिये !
मधुमती महा-विद्या श्री-कुलं परिभाषितं ॥
लतायां पूजयेत् कालीं नीले नील-सरस्वतीं ।
कालिकेव लता-मूला नील-मूला च तारिणी ॥
उभयोरुभयोः पूजा सा पूजा मोक्ष-दायिनी ।
विशिष्टा चेन्महा-सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥
लता-नीलं विना देवि ! कालीं तारां च पूजयेत् ।
कुल-नाथं समाश्रित्य चोपदेशं प्रकल्पयेत् ॥
कुल-नाथं विना देवि ! मन्त्रं तन्त्रं न सिद्धयति ।
भावस्तु त्रिविधो देवि ! तथैव मन्त्र-देवता ॥
कुल-शास्त्र-रता ज्ञेया गुरवो बहवः स्मृताः ।
कुल-शास्त्र-विशेषज्ञो गुरुरेको हि दुर्लभः ॥
पशु-गुरोर्मुखाल्लब्ध्वा पशुरेव न संशयः ।
वीर-गुरोर्मुखाल्लब्ध्वा वीर एव न संशयः ॥
दिव्य-गुरोर्मुखाल्लब्ध्वा दिव्य एव न संशयः ।
दिव्ये वीरे च यो भेदः स भेदः परिभाष्यते ॥
दिव्यश्च देवता-प्रायो वीरश्चोद्धत-मानसः ।
पूर्वाम्नायोदितं कर्म प्राशवं परिकीर्तितम् ॥
यदुक्तं दक्षिणाम्नाये तदेव पाशवं स्मृतम् ।
पश्चिमाम्नायजं कर्म वीर-पशु-समन्वितम् ॥

उदङ्-मुखोदितं कर्म दिव्य-भावान्वितं प्रिये !
दिव्योऽपि वीर-भावेन साधयेत् पितृ-कानने ॥
ऊर्ध्वाम्नायोदितं कर्म दिव्य-भावाश्रितं प्रिये !
श्मशान-गामिनो वीराः कलां पूजन्ति सर्वदा ॥
श्मशान-गामिनो वीरा गुप्ता योनीव पार्वति !
गोपनात् सिद्धिमाप्नोति व्यक्ताच्च कुल-नाशनं ॥
दिव्य-वीरान्वितं कर्म फलदं गोपनान्वित ।
देवता-गुरु-मन्त्राणां प्रभावं दर्शयेत् ततः ॥
दिव्यौषधीनां वीराणां यद्यत् कर्म च योगिनां ।
तत्सर्वं गोपनं कार्यं प्रकाशान्निष्फलं भवेत् ॥
रात्रौ कुल-क्रियां कुर्याद्दिवा कुर्याच्च वैदिकीं ।
दिवा-रात्रौ यजेद् देवीं योगी योग-प्रभेदतः ॥
न दिवा पूजयेद् वीरो न पशु रात्रि-पूजनं ।
विवर्जयेन्महेशानि ! अभिचाराय कल्पते ॥
कला-पूजां विधायाथ मनसा वा कुलेश्वरीं ।
पूजयेद् दक्षिणां कालीं श्मशाने कुल-साधकः ॥
श्मशानं दक्षिणा-स्थानं श्मशानं च सदाशिवः ।
योनि-रूपा महा-काली शव-शय्या प्रकीर्तिता ॥
श्मशानं द्विविधं देवि ! चिता योनिः प्रकीर्तिता ।
शिव-लिङ्गं कुलेशानि ! महाकालेन भाषितम् ॥

द्वयोर्योगं विना नैव दक्षिणा सा फल-प्रदा ।
त्रिपान्तरे कला-पूजा कर्तव्या साधकोत्तमैः ॥
कला-पूजां विना देवि ! दक्षिणा न फल-प्रदा ।
कला-पूजा कृता येन तेन काली प्रपूजिता ॥
कला-पूजा-कृतो दिव्यो वीरो वा कुल-सुन्दरि !
इहैव सुखमाप्नोति परे निर्वाणतां व्रजेत् ॥
न चार्चयेत् कलां यस्तु न जपेद् दक्षिणां शुभां ।
निष्फलं जीवनं तस्य क्रुद्धा भवति कालिका ॥
कला-पूजां विना देवि ! सर्वं निष्फलतां व्रजेत् ।
जन्मान्तर-सहस्रेषु कालो नैव प्रसीदति ॥
कला-पूजां विना देवि ! या काचित् क्रियते क्रिया ।
सा क्रिया अभिचाराय सत्यं सत्यं न संशयः ॥
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन कला-पूजां समाचरेत् ।
योनि-रूपा कला देवि ! दक्षिणैव न संशयः ।
दिव्यो वीरो वरारोहे ! कला-पूजां प्रकल्पयेत् ॥
पशु-भावाश्रितो मन्त्रीं कलां नैव प्रपूजयेत् ।
कलाया द्विविधा पूजा गुप्ता व्यक्ता कुलेश्वरि !
गुप्ता च साधकैः कार्या निर्जने च महा-निशि ॥
व्यक्ता दिवा प्रकर्तव्या लोकाचार-क्रमेण तु ।
लोकाचारं विना देवि ! गोपनं नैव जायते ॥

गोपनं सिद्धि-मूलं च सत्यं सत्यं न संशयः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च कुल-सुन्दरि ॥
कलावासव-योगेन कला-पूजां प्रकल्पयेत् ।
द्रव्याभावे द्विजो दद्याच्चानुकल्पं युगे युगे ॥
कलायाश्चानुकल्पश्च कलायाश्चैव चिन्तनं ।
द्विजातीनां च सर्वेषां द्विधा विधिरिहोच्यते ॥
दिवा च पाशवं कर्म रात्रि-कर्म च कौलिकं ।
पुरश्चर्यादिकं कर्म द्विविधं भाव-भेदतः ॥

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे पार्वतीश्वर-संवादे प्रथमः पटलः ॥
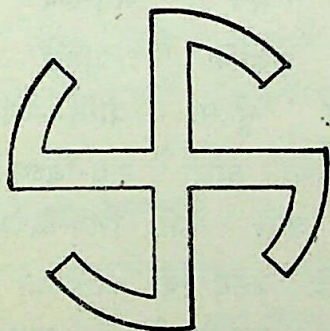
द्वितीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

देव-देव ! महा-देव ! सृष्टि-स्थिति-लयात्मक !
कीदृशी दक्षिणा काली तस्या मन्त्रश्च कीदृशः ॥
पूजा वा कीदृशी तस्याः पूजायाः कीदृशं फलं ?
गुरुर्वा कीदृशो देव ! पुरश्चर्या च कीदृशी ॥
साधनं कीदृशं तस्याः फलं तस्य च कीदृशं ?
तत् प्रकाशय सम्यङ् मे येन यामि निरुत्तरम् ॥

श्रीशिव उवाच—

भगं भगवती ज्ञेया दक्षिणा त्रिगुणेश्वरी ।
चराचरमिदं सर्वं भग-रूपं कुलेश्वरि ॥
महत्त्वादीनि सर्वाणि त्रिविधं परिकथ्यते ।
हकारार्द्ध-कला सूक्ष्मा योनि-मध्य-स्वरूपिणी ॥
योनिश्च दक्षिणा काली ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका ।
त्रिकोणे च त्रयो देवाः शिव-विष्णु-पितामहाः ॥
योनि-मध्ये देवि ! वसेद् देवी कालिका कुल-सुन्दरी ।
ज्योति-रूपा महा-काली शुक्र-रूपा प्रपञ्च-सू ॥
शुक्रतो जायते विश्वं शिव-शक्ति-प्रभेदतः ।
शिव-शक्तिर्द्विधा देवि ! निर्गुणा सगुणापि च ॥

निर्गुणा ज्योतिषां वृन्दं पर-ब्रह्म सनातनो ।
परं च पुरुषं विद्धि महा-नील-मणि-प्रभम् ॥

ज्योतिश्च दक्षिणा कालो दूरस्था स्यात् प्रपञ्च-सू ।
विपरीत-रता कालो निर्गुणा सगुणापि च ॥

अमा स्यान्निर्गुणे सापि अनिरुद्ध-सरस्वती ।
सगुणा सुर-गर्भे च महा-काल-निरूपिणी ॥

नारी-रूपं समास्थाय सैव विश्वं प्रसूयते ।
विष्णु-माया महा-लक्ष्मीर्मोहयत्यखिलं जगत् ॥

सहवानेव सा देवी योनि-मार्गे चराचरं ।
देव-मार्गमिदं विश्वं देव-मार्ग-निषेवितम् ॥

शिव-शक्ति-मयं तत्त्वं तत्त्व-ज्ञानस्य कारणं ।
बहूनां जन्मनामन्ते शक्ति-ज्ञानं प्रजायते ॥

शक्ति-ज्ञानं विना देवि ! निर्वाणं नैव जायते ।
सा शक्तिर्दक्षिणा काली सिद्ध-विद्या-स्वरूपिणी ॥

सिद्ध-विद्यासु सर्वासु दक्षिणा प्रकृतिः पुमान् ।
अविना-भाव-सम्बन्धस्तयोरेव परस्परं ॥

शिवोऽपि तत्र युक्तश्चेच्छक्तिः स्याच्छिव-योगतः ।
तयोर्योग-मयं तत्त्वं तयोर्योगेन चिन्तनं ॥

तयोर्योग-मयं मन्त्रं तयोर्योगेन सञ्जपेत् ।
तयोर्मन्त्रं महा-मन्त्रं भोग-मोक्ष-प्रदायकम् ॥

भोगेन लभते मोक्षं सालोक्यादि-चतुष्टयं ।
महा-कल्प-तरुः कालो अनिरुद्ध-सरस्वती ॥
ब्रह्म-विष्णु-महेशानां भुक्ति-मुक्त्येक-कारणं ।
सा कालो गुरुतोऽऽराध्या मन्त्र-तन्त्र-स्वरूपिणी ॥
अथ वक्ष्ये कुलेशानि ! दक्षिणा-कालिका-मनुः ।
तेन विज्ञान-मात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥
ब्रह्मासन-युतं देवि ! नाद-बिन्दु-समन्वितम् ।
वाम-नेत्रार्ण-संयुक्तं चित्-स्वरूपं परापरम् ॥
एकाक्षरी सिद्ध-विद्या मन्त्र-राज्ञी कुलेश्वरि !
त्रिगुणा च कूर्च-युग्मं लज्जा-युग्मं ततः परं ॥
दक्षिणे कालिके चेति सप्त-बीजानि योजयेत् ।
अन्ते वह्नि-वधूं दद्याद् विद्या-राज्ञी प्रकीर्तिता ॥
सर्व-मन्त्र-मयी विद्या सृष्टि-स्थित्यन्त-कारिणी ।
अपि चेत् त्वत्समा नारी मत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ॥
अनिरुद्ध-सरस्वत्याः समो मन्त्रोऽस्ति वै तदा ।
ब्रह्मा रुद्रश्च विष्णुश्च सर्वे देवा उपासकाः ॥
वेदागम-पुराणेषु वन्दिता कालिका शुभा ।
कालिका काम-पीठेषु सर्व-काम-प्रदायिनी ॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये केचित् सन्ति भैरवाः ।
ते सर्वे कालिका-पुत्रास्ते मुक्ता नात्र संशयः ॥

सङ्केत-मार्गाद् देवेशि ! नाभिषेकं गुरु-क्रमात् ।
पूजा-काले विशेषेण तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः उष्णिक् छन्दः प्रकीर्तितं ।
देवता दक्षिणा-काली अनिरुद्ध-सरस्वती ॥

ह्रीं बीजं हुं शक्तिश्च क्रीं चैव कीलकं स्मृतं ।
धर्मार्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
न्यास-जालं पुरा प्रोक्तं नाना-तन्त्रेषु पार्वति !
न्यास-जाल-युतो मन्त्री वीर-भावेन पूजयेत् ॥
त्रिपञ्चारे महा-पीठे योनि-पीठं प्रपूजयेत् ।
ध्यायेत् कालीं करालास्यां पीनोन्नत-पयोधरां ॥
महा-मेघ-प्रभां श्यामां घोर-रावां चतुर्भुजां ।
सद्यश्छिन्न-शिरः-खड्ग-वामोर्द्धाधः-कराम्बुजां ॥

अभयं वरदं चैव दक्षिणोर्ध्वाधः-पाणिकां ।
पञ्चाशद्-वर्ण-मुण्डाली-गलद्-रुधिर-चर्चितां ॥

सृक्क-द्वय-गलद्-रक्त-धारा-विस्फुरिताननां ।
शिवाभिर्घोर-रावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्वितां ॥

शवानां कर-सङ्घातैः कृत-काञ्चीं हसन्मुखीं ।
दिगम्बरीं मुक्त-केशीं चन्द्रार्ध-कृत-शेखरां ॥

शव-रूप-महादेव-हृदयोपरि संस्थितां ।
महा-कालेन च समं विपरीत-रतातुरां ॥

मदिराघूर्ण-नयनां स्मेरानन-सरोरुहां ।
अट्टहासां महा-रौद्रीं सर्वदानन्द-कारिणीं ॥
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालय-वासिनीं ।
एवं ध्यात्वा यजेद् वीरो निशायां कुल-मन्दिरे ॥
मानसं पूजनं कृत्वा कुल-पुष्पं समाहरेत् ।
मानसं पूजनं नैव गच्छेत्तु पितृ-कानने ॥
स पापिष्ठो यजेन्नैव कालीं कलुष-हारिणीं ।
उच्चैर्नोच्चारयेन्मन्त्रं मनसा च स्मेरन्मनुं ॥
तत्र चावाहनं नेष्टं कामाख्यायां कुलेश्वरि !
आराध्य मनसा भक्त्या बाह्य-पूजामथाचरेत् ॥
आत्म-शुद्धिं द्रव्य-शुद्धिं कृत्वा पात्राणि विन्यसेत् ।
अर्घ्य-पात्रादिकं तत्र विन्यसेद् विधि-पूर्वकं ॥
पीठ-पूजां विधायाथ पूजयेत् तत्र देवतां ।
चिन्तयेत् परया भक्त्या विधि-दृष्टेन कर्मणा ॥
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकं ।
स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणानि च सर्वशः ॥
गन्धं पुष्पं धूप-दीपौ मधुपर्कं ततः परं ।
मन्त्रमुच्चार्य दातव्यं तर्पणं च ततः परं ॥
माल्यानुलेपनं चैव पञ्च पुष्पाञ्जलींस्ततः ।
पुनः प्रपूजयेद् देवीं महा-कालेन लालितां ॥

षोडशोपचार-युक्ता ह्यष्टौ पूजा प्रकीर्तिता ।
अष्टाभिः शक्तिभिश्चापि लोक-पालैश्च सम्मतः ॥

पीठ-मन्त्र-क्रमाद् यागः स मार्गः परमः स्मृतः ।
पीठेनैव समस्तेन बहिरावरणं विना ॥

मन्त्रं पूर्व-कृतो यागो नित्य-यागः स मध्यमः ।
केवलं पुष्प-यागस्तु कनिष्ठ-पूजनं भवेत् ॥

तत आज्ञां समादायावरणं च प्रपूजयेत् ।
कमलां मुकुटं मूर्ध्नि कर्णे च कुण्डले ततः ॥

गुरु-पंक्ति ततो देवि ! महा-कालं ततः परं ।
धूम्र-वर्णं महा-कालं जटा-तारान्वितं प्रिये ॥

त्रि-नेत्रं शव-रूपं च शक्ति-युक्तं निरामयं ।
दिगम्बरं घोर-रूपं नीलाञ्जन-सम-प्रभं ॥

निर्गुणं च गुणाधारं काली-स्थानं पुनः पुनः ।
काली कपालिनी कुल्ला प्रथमे च त्रिकोणके ॥

मात्रा-मुद्रा-मिता-देव्यः पञ्चमे च त्रिकोणके ।
दलाष्टे पूजयेद् देवि ! पूर्वादि-क्रम-योगतः ॥

ब्राह्मी नारायणी चैव कौमारी च महेश्वरी ।
अपराजिता च चामुण्डा वाराही नारसिंहिका ॥

चतुर्द्वारे यजेद् देवि ! असिताङ्गादि-भैरवान् ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधो भीषण एव च ॥

उन्मत्तश्च कपालो च संहारक इति क्रमात् ।
पूर्वादि-क्रमतो देवि ! द्वारि द्वारि द्वयं द्वयं ॥

इन्द्रादि-दश-दिक्-पालान् दश-दिक्षु प्रपूजयेत् ।
खड्गं मुण्डं यजेद् वामे हस्ते च कुल-सुन्दरि ॥

पूजयेद् दक्षिणे हस्ते अभयं च वरं तथा ।
पुनश्च पूजयेद् देवीं सायुधां च सवाहनां ॥

कुल्लुकां मूर्ध्नि सञ्जप्य हृदि सेतुं विचिन्तयेत् ।
महा-सेतुं कण्ठ-देशे नाभौ योनिं विचिन्तयेत् ॥

सेतुं तु प्रणवं देवि ! हृदिस्थं तं प्रपूजयेत् ।
निज-वीजं महा-सेतुं कण्ठ-देशे विचिन्तयेत् ॥

सविन्दु-मातृका-युक्ता नाभि-मध्ये विचिन्तयेत् ।
काली-कूर्चं वधूर्माया फट्कारान्तं सुरेश्वरि ॥

पञ्चाक्षरी कालिकायाः कुल्लुकां परिचिन्तयेत् ।
तारायाः कुल्लुका देवी महा-नील-सरस्वती ॥

अन्यासां च वधू-वीजं कुल्लुका परिकथ्यते ।
काली-कुल-प्रवृत्तानां पूजायामेवमाचरेत् ॥

अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा पुनः पूजां प्रकल्पयेत् ।
पुनः प्रपूजयेद् देवीं महा-कालेन लालितां ॥

ततस्तु कवचं देवि ! स्तवं च प्रपठेत् ततः ॥

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-संवादे द्वितीयः पटलः ॥

तृतीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् ! सर्व-देवेश ! सर्व-भूत-नमस्कृत ।
सर्वं मे कथितं देव ! कवचं न प्रकाशितं ॥
कथयस्व सुर-श्रेष्ठ ! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥

श्रीशिव उवाच—

सिद्ध-काली शिरः पातु ललाटं पातु दक्षिणा ।
काली मुखं सदा पातु कपाली पातु चक्षुषी ॥

कुल्ला गण्डौ सदा पातु वदनं कुरु-कुल्लिका ।
विरोधिन्यधरं पातु चिबुकं विप्र-चित्तिका ॥

उग्रा कर्णौ सदा पातु नासामुग्र-प्रभा तथा ।
कण्ठं दीप्ता सदा पातु ग्रीवां नीला प्रभावतु ॥

वक्षः-स्थलं पातु घना पृष्ठं मात्रा सदावतु ।
मुद्रा नाभिं सदा पातु मिता लिङ्गं सदावतु ॥

रति-प्रिया लिङ्ग-मूलं गुह्यं शिव-प्रियावतु ।
अरुणा तालु-मूलं हि रसनां तरुणा तथा ॥

महा-काल-प्रिया जानु विकटा पातु जङ्घयोः ।
श्मशान-वासिनी भार्यां पुत्रं पातु दिगम्बरी ॥

भवनं मत्त-हासा च मातरं मे सुरेश्वरी ।
राज-स्थानं घोर-रावा सततं पातु कालिका ।।
धर्मं पातु घोर-रूपा अधर्मं मुण्ड-मालिनी ।
कर-काञ्ची पातु नित्यं कालिका सर्वदावतु ।।
काम-वीज-त्रयं पातु नाभितः पादमेव च ।
कूर्च-वीज-युगं पातु सदा मे नाभि-देशतः ।।
शक्ति-वीज-द्वयं पातु ब्रह्मरन्ध्राननं पुनः ।
काम-वीज-द्वयं पातु पूर्वस्यां दिशि सर्वदा ।।
कूर्च-वीज-युगं पातु दक्षिणस्यां सदावतु ।
शक्ति-वीज-युगं पातु प्रतीच्यां सर्वदा शुभा ।।
वह्नि-जाया चोत्तरस्यां दिशि पातु च मां सदा ।
विद्या-राज्ञी च सर्वासामनिरुद्ध-सरस्वती ।।
कालिका-कवचं दिव्यं यः पठेद् यत्नतः सुधीः ।
भूत-प्रेत-पिशाचाद्याः कूष्माण्डा राक्षसा ग्रहाः ।
तस्य दूरात् पलायन्ते सत्यं सत्यं न संशयः ।।

श्रीदेव्युवाच–

शङ्करो यां स्तुतिं कृत्वा सर्व-सिद्धीश्वरोऽभवत् ।
तां मे कथय देवेशि ! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।।

श्रीशिव उवाच–

हुँ हुँकारे शवारूढे नील-नीरज-लोचने !
त्रैलोक्यैक-मुखे दिव्ये कालिकायै नमोऽस्तु ते ।।

प्रत्यालीढ-पदे घोरे मुण्ड-माला-प्रलम्बिते !
खर्वे लम्बोदरे भीमे कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥

नव-यौवन-सम्पन्ने गज-कुम्भोपम-स्तनि !
वागीश्वरि शिवे शान्ते कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥

ललज्जिह्वे हरालोके नेत्र-त्रितय-भूषिते !
घोर-हास्योत्करे देवि कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥

व्याघ्र-चर्माम्बर-धरे खड्ग-कर्त्री-करे धरे !
कपालेन्दीवरे वामे कालिकायै नमोस्तु ते ॥

नीलोत्पल-जटा-भारे सिन्दूरेन्दु-मुखोद्वये !
स्फुरद्-वक्त्रोष्ठ-दशने कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥

प्रलयानला-धूम्राभे चन्द्र-सूर्याग्नि-लोचने !
शैल-वासे शुभे मातः कालिकायै नमोस्तु ते ॥
ब्रह्म-शम्भु-जलौघे च शव-मध्य-प्रसंस्थिते !
प्रेत-कोटि-समायुक्ते कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥

कृपा-मयि हरे मातः सर्वाशा-परिपूरिते !
वरदे भोगदे मोक्षे कालिकायै नमोऽस्तु ते ॥

इत्येतत् कालिका-स्तोत्रं यः पठेद् भक्ति-संयुतः ।
कृत-कृत्यो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे तृतीयः पटलः ॥

चतुर्थः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

पूजा च कथिता देव ! पुरश्चर्या च कीदृशी ?
कथयस्व सुर-श्रेष्ठ ! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।।

श्रीशिव उवाच—

उत्तमा मानसी पूजा बाह्या पूजा कनीयसी ।
पूजया लभते पूजां जपात् सिद्धिर्न संशयः ।।
होमेन सर्व-सिद्धिः स्यात्तस्मात् त्रितयमाचरेत् ।
वीराणां मानसी पूजा दिव्यानां च कुलेश्वरि !
आसनानि च नाडीनां सङ्केतं शृणु साम्प्रतं ।
एतज्ज्ञानं विना देवि ! पुरश्चर्या न जायते ।।
आसनं प्राण-संरोधः प्रत्याहारश्च धारणं ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ।।
आसनानि कुलेशानि ! यावन्तो जीव-जन्तवः ।
चतुरशीति-लक्षाणां जन्तवः समुदाहृताः ।।
आसनेभ्यः समस्तेभ्यः साम्प्रत द्वयमुच्यते ।
एकं सिद्धासनं नाम द्वितीयं कमलासनं ।।
नाडीनां समूहो देवि ! व्यक्तश्चास्ति खगाण्ड-वत् ।
तत्र नाड्यः समुद्भूतः सहस्राणां द्वि-सप्ततिः ।।

प्रधानं प्राण-वाहिन्यः स्वयं तत्र दश स्मृताः ।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना चैव कीर्तिता ।।
गान्धारी हस्ति-जिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुषा कुहुश्चैव शङ्खिनी च दश स्मृताः ।।
एवं नाडी-मयं चक्रं विज्ञेयं शक्ति-चक्रके ।
इडायाः पिङ्गलायाश्च मध्यं यत्तत् सुषुम्ना ।।
इयं च त्रिगुणा ज्ञेया ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका ।
रजोगुणा ध्वजाख्या च चित्रिणी सत्व-सम्पदा ।।
तमोगुणा ब्रह्म-नाडी कार्य-भेद-क्रमेण च ।
इडायाः पिङ्गलायाश्च एताः सर्वाः प्रकीर्तिताः ।।
एताश्च प्राण-वाहिन्यः सोम-सूर्याग्नि-देवताः ।
इडा नाड़ी स्थिता वामे दक्षिणे चैव पिङ्गला ।।
सुषुम्ना च तयोर्मध्ये चन्द्र-सूर्य-प्रभेदतः ।
वायवश्चैव विज्ञेया मनश्चन्द्रात्मकं हृदि ।।
प्राणोऽपानः समानश्चोदान-व्यानौ च वायवः ।
हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभि-देशतः ।।
उदानः कण्ठ-देशे स्याद् व्यानः सर्व-शरीरगः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।।
प्राणाद्याः पञ्च विख्याता नागाद्याः पञ्च वायवः ।
एते नाड़ी-समस्तेषु वर्तन्ते चान्य-संज्ञकाः ।।

गुण-बद्धो यथा जीवः प्राणापानेन कर्षति ।
अपानः कर्षति प्राणं प्राणापानं च कर्षति ।।
अध-ऊर्ध्व-स्थितावेतौ यो जानाति स योग-वित् ।
हंस-गतिः प्रकृतिर्ज्ञेया ॐकारः प्रकृते गुणः ।।
हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः ।
हंस इति परं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।।
षट्-शतानि दिवा-रात्रौ सहस्राण्येक-विंशति ।
एतत् संख्यायतं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्ष-दायिनी ।
अजपा च द्विधा प्रोक्ता व्यक्ता गुप्ता क्रमेण तु ।।
व्यक्ता च द्विविधा प्रोक्ता हृदि स्थाने व्यवस्थिता ।
ठकाराकार-गुप्ता च शिव-शक्तिः प्रकीर्तिता ।।
चन्द्र-बीजं ठकारं च तं बीजं शृणु उच्यते ।
अजपार्थ-मयी गुप्ता वह्नि-जाया प्रकीर्तिता ।।
अस्याः सङ्कल्प-मात्रेण पुरश्चरणमुच्यते ।
प्राणायाम-द्वि-षट्केन प्रत्याहारः स उच्यते ।।
प्रत्याहार-सहस्रेण जानीयाद् धारणां शुभां ।
धारणाद् द्वादश प्रोक्ता ध्यानं ध्यान-विशारदैः ।।
ध्यान-द्वादशकैरेव समाधिरवधीयतां ।
यत् समाधेः परं ज्योतिरनन्तं विश्वतोमुखं ।।

अस्मिन् दृष्टे क्रिया काचिद् यातायातं न विद्यते ।
यथा सिंहे गज-व्याघ्रं वादत्वं च शनैः शनैः ॥
तथैव चलितो वायुरन्यथा हन्ति साधकं ।
चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथा-क्रमं ॥
प्रत्याहारे तथा चैवं प्रत्याहारादिरुच्यते ।
करणं कुम्भकाद् देवि ! समाधिश्च प्रजायते ॥
पुष्पान्तर-गतं ज्योतिर्भ्रुवोर्मध्ये प्रतिष्ठितं ।
तच्चिन्तनं कुलेशानि ! योगिनां पूजनं महत् ॥
ज्योतिषां चिन्तनं चैव ध्यानं विषय-संकृतिः ।
निर्गुणादिक-भावेन वीराणां शृणु मूलकं ॥
सगुणा ज्योतिषां मूर्तिर्हृदिस्थां कालिकां स्मरेत् ।
आपादं शीर्ष-पर्यन्तं पूज्या यत्नादिभिः प्रिये ॥
ब्रह्माण्डोद्भव-द्रव्याणि चर्व्य-चोष्यादिकानि च ।
फलं पुष्पं यथा गन्धं वस्त्रालङ्कार-भूषितं ॥
तत्सर्वं मनसा देयं कालिकायै पुनः पुनः ।
पेयं जल-निधेर्मानं द्रव्यं च गिरि-मानतः ॥
यत्नेनैव प्रदद्यात्तु कालिकायै पुनः पुनः ।
इयं च मानसी पूजा कथिता वर-वर्णिनि ॥
निर्वाणं दिव्य-भावैस्तु वीर-भावैः समानतां ।
इदं तत्त्वं जपाम्नायं ज्ञात्वा पुरश्चरणमाचरेत् ॥

निजाम्नायं विना देवि ! न कुर्याच्च पुरस्क्रियात् ।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन निजाम्नायं विचिन्तयेत् ।।

उत्तराम्नायोदितं सर्वं कालो-कुलं कुलेश्वरि !
सर्वाम्नायोदितं तत्त्वं श्री-कुलं च क्रमेण तु ।।

उत्तराम्नायोदिता विद्या भैरवी त्रिपुर-सुन्दरी ।
मातङ्गी पश्चिमाम्नाये दक्षिणाम्नाये च तावुभौ ।।

धूमा च त्वरिता चैव पूर्वाम्नाये प्रतिष्ठिता ।
त्रिपुरा बगला चैव महा-विद्या विशेषतः ।।

दक्षिणाम्नायोदिताः सर्वाः पशुभिः पूजिता सदा ।
काली-कूर्चं वधूर्जाया प्रणवं वाग्भवं प्रिये ।।

शूल-हस्ता च या विद्योत्तराम्नायोदिता शुभा ।
द्वाविंशत्यक्षरी विद्या दक्षिणाम्नाये प्रतिष्ठिता ।।

लक्ष-द्वयं जपेद् विद्यां दिवा-रात्रि-प्रभेदतः ।
दिवा लक्षं जपेद् विद्यां हविष्याशी सदा शुचिः ।।

दशांशं जुहुयाद् वह्नौ तद्दशांशं च तर्पयेत् ।
तद्दशांशाभिषेकं च तीर्थ-तोयेन पार्वति ।।

तद्दशांशं हविष्यान्नैर्भोजयेद् भक्तितो द्विजान् ।
पाशवं कथितं कल्पं शृणु वीरं ततः परं ।।

नक्तं याम-गते देवि ! स्व-कुलं परिचिन्तयेत् ।
आनीय कान्तां सुशीलां कुल-भक्तां कुलार्चने ।

शक्ति-चक्रं द्विधा कृत्वा शक्ति-भाले लिखेत् ततः ।
तत्र काम-कलां देवीं शिव-कोणे विलेखयेत् ॥
तन्मध्ये देव-मन्त्रं तु लाञ्छितं कमलाञ्चितं ।
तत्र देवीं समावाह्य ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत् ॥
ततस्तच्छक्ति-कर्णे च ऋषिच्छन्दः - समन्वितं ।
मूल-मन्त्रं त्रिधा कृत्वा कथयेद् वाम-कर्णके ॥
अद्य प्रभृति देवि ! त्वं कुल-देवार्चनं कुरु ।
गुरोराज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा प्रवर्त्तोऽहं कुलार्चने ॥
ततः पश्चात् कुलागारे कुल-चक्रं लिखेत् प्रिये !
तत्र पूजा कुल-द्रव्यैः क्रियते भक्ति-भावतः ॥
तत्र चावाहनं नास्ति यतो देवो - स्वरूपिणी ।
पूजयित्वा यथा-न्यायं तत्त्व-चिन्ता-परो भवेत् ॥
तत्त्व-चिन्ता-परो मन्त्री जपेल्लक्षं कुलाकुलं ।
दशांशं जुहुयाद् वह्नौ आसवैः पललान्वितैः ॥
तद्दशांशं तर्पणं च सुधा-पलल-संयुतैः ।
अभिषेकं तद्दशांशं तीर्थ-तोयेन पार्वति ॥
कुल-द्रव्यैस्तद्दशांशं भक्तितो भोजयेद् द्विजान् ।
आदावन्ते च मध्ये च शक्ति मां भोजयेत् कुलं ॥
तदभावे कुलेशानि ! शक्ति चात्र प्रपूजयेत् ।
तासां च कुल-चक्रान्ते मनसा च प्रपूजयेत् ॥

पुरश्चरण-काले च यदि शक्ति न पूजयेत् ।
तस्य पूजा जपो होमोऽभिचाराय च कल्प्यते ।।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन शक्तीनां पूजनं चरेत् ।
पुरश्चरण-काले च संख्या न स्मरिता यदि ।।
शक्तीनां हि कुमारीणां द्विजातीनां कुल-पालिनां ।
तोषणं कुल-द्रव्येण भोजयेच्च पुनः पुनः ।।
सम्प्रदाय-विदे विद्वान् दद्यात्तु गुरु-दक्षिणां ।
वस्त्रालङ्कार-भूषाद्यैर्भूषयेत् कुल-गुरून् प्रिये ।।
तत्सुतं तत्सुतां वापि तत्पत्नीं वा कुलेश्वरि !
पूजयेत् परया भक्त्या मन्त्र-सिद्धि लभेद् यतः ।।
।। इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे चतुर्थः पटलः ।।
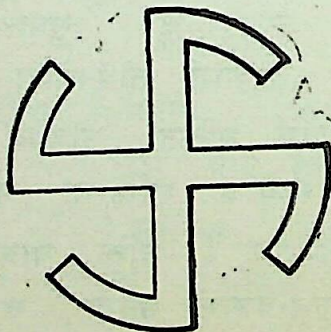
पञ्चमः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

कीदृशीं रजनीं देवीं पूजयेत् किं निवेदयेत् ?
तस्या वा कीदृशी पूजा तद्-गायत्री च कीदृशी ॥
जपं वा कीदृशं देव ! पुरश्चर्या च कीदृशी ?
साधना कीदृशी तस्या वद मे परमेश्वर ॥

श्रीशिव उवाच—

निर्लोभा कामना-हीना निर्लज्जा द्वन्द्व-वर्जिता ।
शिवा सत्व-गता साध्वी स्वेच्छया विपरीतगा ॥
एवं सा रजनी देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता ।
आत्मना पूजने सैव समूले कुल-वर्त्मना ॥
अक्ष्णोरन्तर्गतं ज्योतिर्भ्रुवोरन्तः प्रतिष्ठितं ।
यतो रूपं परं ज्योतिस्तदेव कुल-मन्दिरे ॥
मनसा साधकं वीक्ष्य क्रीडनात् पतितामृतं ।
तेनामृतेन मूलेन तर्पयेद् रजनीं स्वयं ॥
कुल-नाथं कुलागारे नियोज्य भावयेच्छिवां ।
श्वासोच्छ्वासे च गायत्रीं त्वजपा-ब्रह्म-रूपिणीं ॥
अजपा रजनी गायत्री ब्रह्म-गायत्री च योगिनां ।
अजपा रजनी गायत्री रजन्यां रजनीं जपेत् ॥

न जपेद् दिवसे विद्वान् ब्रह्म-विद्यात्मिकां परां ।
जपेन्नरकमाप्नोति इहैव दुःख-भाग् भवेत् ॥
कला-नाथं समानीय नियोज्य कुल-मन्दिरे ।
योजयित्वा जपेन्मन्त्रं कुलकेन च ताडयेत् ॥
विंशत्या महती पूजा शतेन शतधा भवेत् ।
रजन्याः कथिता पूजा ध्यानं च तत्त्व-चिन्तनं ॥
सङ्केतज्ञः कला-नाथं साधयेदेक-चेतसा ।
रजनी-मूल-योगेन निर्वाण-पदवीं व्रजेत् ॥
शठं च चुल्लुकं धूर्तं सङ्केत-हीन-दाम्भिकं ।
सन्त्यज्य साधयेद् विद्यां महा-मोक्ष-प्रदायिनीं ॥
धनाद्वा कामतो वापि लोभाद्वा निज-मन्दिरं ।
कारयेद् यदि सा पूजा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
सङ्केतज्ञं दृढं ज्ञात्वा साधनं शिव-साधनं ।
अन्यथा दुःखमाप्नोति स याति नरकं ध्रुवं ॥
प्रकृत्यथ व्रजेद्वापि ज्ञात्वा यच्च प्रपूजयेत् ।
सोऽपि निर्वाणतां प्राप्य पुनरावृत्य भू-तले ॥
अभेद-प्रकृतिं ज्ञात्वा जप-होमादिकं चरेत् ।
सर्व-देव-स्वरूपं च सर्व-मन्त्र-स्वरूपिणी ॥
प्रकृतिस्तत्वमास्थाय कैवल्यं याति निश्चितं ।
प्रकृतेस्तत्वविद् देवि ! न स योनौ प्रजायते ॥

अशोधितमनाचर्यं स्त्रीषु मध्येषु सुव्रते !
स्वीकारे सिद्धि-हानिः स्याद् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

क्षुधार्तश्च तृषार्तश्च कालिकां नैव पूजयेत् ।
पूजयेद् यदि देवेशि ! क्रुद्धा भवति कालिका ॥

साधके क्षोभमापन्ने देवी-क्षोभः प्रजायते ।
तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् कालिकां शुभां ॥

विना पीत्वा सुरां भुक्त्वा मत्स्य-मांसं रजस्वलां ।
यो जपेद् दक्षिणां कालीं तस्य दुःखं पदे पदे ॥

दिव्य-भावं वीर-भावं विना कालीं प्रपूजयेत् ।
पूजने नरकं याति तस्य दुःखं पदे पदे ॥

लतासवं विना देवि ! कलौ कालीं न पूजयेत् ।
पशु-भावाश्रितो देवि ! यदि कालीं प्रपूजयेत् ॥

रौरवं नरकं याति यावदाहुत-सम्प्लवं ॥
लता-दर्शन-मात्रेण कालिका-दर्शनं भवेत् ॥

दृष्ट्वा च सुन्दरीं शक्तिं कालीं तत्रैव चिन्तयेत् ।
शून्यागारे श्मशाने वा प्रान्तरे निर्जने वने ॥

नदी-तीरे पर्वते वा शक्तिं तत्र प्रपूजयेत् ।
एकाकी पूजयेच्छक्तिं निःशङ्को भय-वर्जितः ॥

गुरुं विना न सङ्गी स्यात् सङ्गी स्यान्नरकं व्रजेत् ।
सङ्गाच्च धन-हानिः स्यात् सर्वं सङ्गाद् विनश्यति ॥

दूती-यागं ततः पूजां रात्रौ पर्यटनं प्रिये !
एकाकी सञ्चरेद् वीरो निःशङ्कः सङ्ग-वर्जितः ॥
रात्रौ पर्यटनं नास्ति न रात्रौ शक्ति-पूजनं ।
नार्चयेत् कालिकां देवीं शाम्भवीं सुख-मोक्षदां ॥
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रां च मैथुनं विना ।
ब्राह्मणो वीर-भावेन कालिकायै निवेदयेत् ॥
पूजा-द्रव्यं महेशानि ! पशुर्वा यदि पश्यति ।
तद्-द्रव्यं च जले क्षिप्त्वा इष्ट-देवं सुचिन्तयेत् ॥
धूर्तं शठं चुल्लुकं च मूर्खं च दाम्भिकं प्रिये !
एते च पाशवा प्रोक्ता सर्वान् भावाश्रितांस्त्यजेत् ॥
पशुभिर्दर्शितं द्रव्यं देवेभ्यो न निवेदयेत् ।
कुल-पूजां कुल-द्रव्यं कुल-स्त्रीं कुल-मङ्गलं ॥
गोपनीयं पशोरग्रे प्रकाशान्मरणं भवेत् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च कुल-योगतः ॥
पञ्चमैः पूजयेत् कालीं मोक्षार्थी च कलौ प्रिये !
ब्राह्मणैः पीयते मद्यं न मद्यं द्विज-पुङ्गवैः ॥
कलावासव-योगेन तर्पयेत् कालिकां प्रिये !
पाने भ्रान्तिर्भवेद् यस्य घृणा स्याद् रक्त-रेतसोः ॥
स पापिष्ठो यजेन्नैव कालीं कलुष-हारिणीं ।
कालीं तारां तथा छिन्नां त्रिपुरां भैरवीं तथा ॥
कलावासव-योगेन सर्वदा पूजयेद् द्विजः ।
श्मशान-भैरवीं चैव उग्रतारां च पञ्चमीं ॥

मातङ्गीं च तथा धूम्रां वगलां भुवनेश्वरीं।
राज-राजेश्वरीं बालां त्वरितां महिष-र्मदिनीं ।।
कलावेताश्चासवैश्च पूज्याश्च दक्षिणां विना।
ब्राह्मणो वीर-भावेन सुरां पीत्वा जपन्मनुं ।।
सुराभावे च गो-क्षीरं द्विजो दद्यात् युगे युगे।
द्रव्याभावे चानुकल्पैः पूजयेत् पर-देवतां ।।
एकादश्यां व्यतीपाते कर्म-लोपनं न कारयेत्।
न कृते च गुरोरर्चां क्रमात् कोऽपि प्रलीयते ।।
केवलं विषयासक्तः पतत्येव न संशयः।
अग्र-चक्रं वीर-भावं तत् कार्यं गुरु-सन्निधौ ।।
तदभावे भ्रातृभिः सार्द्धं कार्यं चैव विधानतः।
पृथक् पात्रे पिबेद् द्रव्यं पृथक् पात्रे च भोजनं ।।
शक्ति-युक्तं वसेद् वापि युग्मं युग्म-विधानतः।
शक्त्युच्छिष्टं पिबेन्मद्यं वीरोच्छिष्टं च चर्वणं ।।
स्व-ज्येष्ठस्य च भोक्तव्यं कनिष्ठस्य न भोजयेत्।
निज-शक्ति विना देवि ! शक्त्युच्छिष्टं पिबेद् यदि ।।
रौरवं नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
एकासने वसेद् यस्तु भुञ्जीत चैक-भाजने ।।
परस्परमुप-स्पर्शात् स याति नरकं ध्रुवं।
एकासनस्थो यो वीरो दिव्यो वा कुल-सुन्दरि ।।
सुधां पीत्वा वीर-चक्रे रौरवं नरकं व्रजेत्।
महा-सिद्धोश्वरो वापि भुंक्ते पीत्वा परस्परं ।।

सिद्धि-हानिः पुरस्कृत्य स याति नरकं ध्रुवं।
विना शक्ति पिबेद् द्रव्यं वीरो गुरु-परायणः ॥
तथापि नरके घोरे पतत्येव न संशयः ।
शक्त्यभावे कुलेशानि ! तद्-द्रव्यं जलतः क्षिपेत् ॥
गुरु-भावे तद्-भागं च जलतो विनिवेदयेत् ।
॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे पञ्चमः पटलः ॥
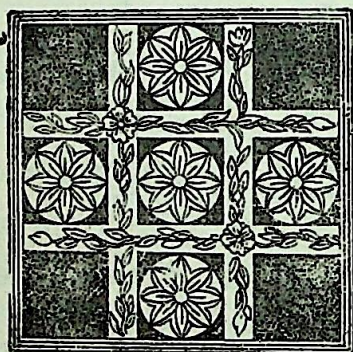
षष्ठः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

रजनी-पूजनादेव द्रुतं सिद्धि कथं भवेत् ?
तत्त्वं कथय मे सर्वं यद्यहं तव वल्लभा ।।

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि लोक-संशय-भेदकं ।
यस्य विज्ञान-मात्रेण जीवन्मुक्तिः प्रजायते ।।
अज्ञान-तिमिराच्छन्ना आवयोः स्मृति-र्वजिताः ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति संसार-जलधौ जनाः ।।
सर्वा नार्यस्त्वमेवासि सर्वेऽहं पुरुषाः प्रिये !
एतद्-विज्ञान-मात्रेण जायते सिद्धि-भाजनाः ।।

श्रीदेव्युवाच—

सर्वज्ञ ! जगतां नाथ ! सर्व-लोक-हिते रत !
केनैतत् द्रुत-सिद्धिः स्यात् तन्मे ब्रूहि कुलेश्वर ।।

श्रीशिव उवाच—

चपलासि वरारोहे ! हेम-गौराङ्गि पार्वति !
संसार-भेदकं ज्ञानं कथं ते कथयाम्यहं ।।

श्रीदेव्युवाच—

चपलाहं सावहिता महादेव ! भवाम्यहं ।
संसार-भेदकं तत्त्वं कथयस्व कृपां कुरु ।।

श्रीशिव उवाच—

संसार-भेदकं ज्ञानं न प्रकाश्यं कदाचन ।
प्रकाश्यते यदा यस्मिन् स हि मत्सदृशो भवेत् ॥
भीत्या वाकर्षिता प्रीत्या धनाद्वा हीनजा तथा ।
चार्वङ्गी सस्मिता प्रीता यौवनाहित-विग्रहा ॥
वीक्ष्यमाणा तनु-क्षीणे प्रोक्षणस्य च तत्परा ।
आनीय वीर - भावेन सुप्रीता चार्घ्य-दानतः ॥
विस्तीर्णमासनं दत्वा भक्त्या ध्यान - तत्परः ।
स्वयं मत्सदृशो भूत्वा निःस्पृहो विगत-स्पृहः ॥
विन्दु-मात्रेण मदन-सद्मनि निधाय चक्रं ।
वश-कारी गिरीन्द्र-जाता आज्ञा-करस्य रजनीमथवा ॥
निशीथे तु बलिं दत्वा निरुक्त-विधिना ततः ।
आवयोः प्रीति-जनकं ध्यात्वा तत्पर-कर्मणा ॥
न कार्यः कर्म-सन्देहो घृणा-लज्जा-विवर्जितः ।
भक्त्या भावमापन्नः प्रकृति-सस्मित-प्रदः ॥
उत्तरादेव फलं तस्मिन् पुंसि तद्भावमागते ।
मनोजा सा तु विज्ञाने क्रमेण परितोषिता ॥
किं दातासि वरं त्वं मे मधु-ताम्बूल-तर्पिते ।
स्थिर-धीर्निरीक्ष्यमाणे तव चक्रं रति-विग्रहं वीरः ॥
अयुतमथवा सहस्रं शतमष्टाधिकं जपेन्मनुं ।
स तु कार्तिकेय-विक्रमो मत्तस्य मम भावं प्रयाति ॥

विप्रास्ते मम पर्वणि नित्यं योगीन्द्रो भावना-निपुणः।
कुरुते गुरूपदिष्टं भुवि भैरव-भावमर्हति ॥
कथयामि वरारोहे ! शृणु तत्त्वं परात्परं।
कथितं नैव कस्मैचित् यदि संसारमिच्छति।
स्त्री-पुंसोः सङ्गमे सौख्यं जायते तत्परं पदं।
तदावयोश्च विन्यस्तं याभ्यां ताभ्यां कृतं नहि ॥
भाजनः सर्व-विद्यानां ब्राह्मणः कामिनी-गणे।
वीराणां जायते श्रेष्ठो भुवि भुवि इवास्पदं ॥
आवयोर्मनसा प्रीतिं यः कुर्याद् विजितेन्द्रियः।
योऽसौ कालीं भजेद् भक्त्या स एव हि न चान्यथा ॥
यः करोति सपर्यां ते देवि ! सद्गुरु-मार्गतः।
सन्देहो नैव कर्तव्यो यदि संसिद्धिमिच्छति ॥
मनोरूपा हि संसिद्धिर्जायते नात्र संशयः।
कुलागारे लभेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभां ॥
वर्तमाने पूजने तु यदि सन्देह-भाजनः।
लभते नैव संसिद्धिर्जन्म-कोटि-सहस्रकैः ॥
इति कथितं परं यत् सहसा सिद्धि-विधायकं महेशि !
जगदति-दूरं विशेषतस्ते मृगशावाक्षि ! विधेहि दक्षिणां ॥

श्रीदेव्युवाच—

प्रेयसी तव देवेश ! गिरीन्द्रस्य च नन्दिनी।
दक्षिणा कीदृशी नाथ ! वद तां च वदाम्यहं ॥
एवमाकर्ण्य देवेशः सस्मितो लोल-लोचनः।
स्वं पश्यन् गिरिजां वीक्ष्य शृणु देवि ! वरानने ॥

अरुणमरुण-तल्पं तु प्रान्त-देशे निधाय ।
पृथुल-कुच-युगलं क्रोड़े प्रौढमालिङ्गनं यत् ।।
स्व-रस-वदनेभ्यः कर्मणा येन वक्षः ।
सुतन्वालिङ्गिता दक्षिणा-भेद-सिद्धौ ।।

।।इति निरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे षष्ठः पटलः ।।
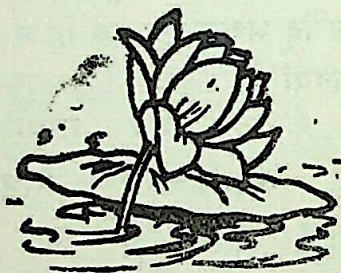
सप्तमः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् ! सर्व-जीवानां साक्षी त्वमसि-हे प्रभो !
अभिषेकं पुरा प्रोक्तं कीदृशं कथय प्रभो ॥

श्रीशिव उवाच—

अभिषेकं च द्विविधं राज्ञां च ज्ञानिनामपि ।
राजाभिषेकं देवेशि ! वैदिकादि-क्रियां चरेत् ॥
ज्ञानिनामभिषेकं तु सर्व-तन्त्रेषु गोपितं ।
कुल-चक्रं क्रमेणैव अभिषेकं चरेत् सुधीः ॥
कुल-नाथं गुरुं वीक्ष्य अभिषेकं गुरुश्चरेत् ।
सर्वं-शान्ति-करं पुण्यं सर्व-रोग-निवारणं ॥
धनदं कामदं चैव आयुर्बुद्धि-करं नृणां ।
सर्व-सौभाग्य-जननं महा-पातक-नाशनं ॥
सर्वाशा-पूरकं देवि ! मन्त्र-दोष-प्रणाशनं ।
सर्वार्थ-साधकं देवि ! धन-वृद्धि-करं परं ॥
अभिचार-हरं सर्वं ग्रह-दोष-निवारणं ।
भूतावेशादि-शमनं डाकिनीनां भयापहं ॥
तेजो-वृद्धि-करं देवि ! सर्व-तीर्थ-फल-प्रदं ।
स्त्री-गतेष्वपि दोषेषु शरीरे मानसे तथा ॥
तक्षकेणापि दंष्टस्य विष-पीडा-विनाशनं ।

तेजो-ह्रासे बले ह्रासे बुद्धि-ह्रासे धन-क्षये ।।
विकारे देशिकः कुर्यादभिषेकं विचक्षणः ।
असौभाग्ये च नारीणामभिषेकः प्रवर्तते ।।
पूर्णाभिषेकी त्वनन्यानभिषेके प्रवर्तते ।
गुरुत्वं च लभेद् देवि ! कर्मणा चाभिषेकतः ।।
वैष्णवं गाणपत्यं च सौरः शैवः कुलेश्वरि !
अभिषेकः प्रकुर्वीत शाक्तश्च कुल-भूषणः ।।
मन्त्र-तन्त्रं च सर्वेषामभिषेकाद्धि सिध्यति ।
अभिषेकेण सर्वेषामधिकारी भवेद् ध्रुवं ।।
अभिषेक-कृतो विप्रो ब्रह्मत्वं लभते ध्रुवं ।
अभिषेक-कृतः क्षत्रो विप्र-धर्मत्वमागतः ।।
वैश्यः क्षत्रियतां याति शूद्रो वैश्यत्वमागतः ।
अभिषेकेण सर्वेषां बद्धोऽपि बद्धतां त्यजेत् ।।
ब्राह्मणस्य सुरा-पाने ब्राह्मण्यं त्यजते क्षणात् ।
अभिषेक-कृते विप्रे सुरा-पानं विधीयते ।।
आगमः पञ्चमो वेदः कुलमाश्रयः पार्वति !
शिवोऽपि पञ्चमो वर्णः सिद्ध-विद्यां जपेद् यतः ।।
सुवर्णत्वं परित्यज्य शिवत्वं सम्प्रजायते ।
अभिषेकं विना नैव ब्राह्मणः तु पिबेत् सुरां ।।
प्रगृह्य सिद्ध-विद्यां च सङ्केतज्ञस्ततो भवेत् ।
सङ्केतज्ञः कुलागारे नाभिषेकं समाचरेत् ।।

अभिषेक-कृतो मन्त्री कुल-पूजां समाचरेत् ।
कुल-पूजा-कृतो मन्त्री पितृ-भूमिं समाश्रयेत् ॥
पितृ-भूमि-कृतं स्थानं एकाकी विहरेत् सदा ।
एकाकी विहरेद् वीरः प्रान्तरे च त्रि-प्रान्तरे ॥
तत्र सिद्धिं लभेद् देवि ! देवानामपि दुर्लभां ।
कुलाचारं विना देवि ! तन्त्र-मन्त्रं न सिद्धयति ॥
सिद्ध-विद्या कुलागारे द्रुतं सिद्धयति निश्चितं ।
अभिषेक-कृतो विप्रः सुरां दद्याद् युगे युगे ॥
सुरां पीत्वा जपेद् विद्यां कुलागारे विशेषतः ।
विजया चानुकल्पं च सुराभावे निवेदयेत् ॥
आनन्देन विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति देवताः ।
पञ्चमेनार्चयेत् कालीं कामाख्यायां विशेषतः ॥
कामाख्यायां विशेषेण कालिका सिद्धिदा भवेत् ।
कुलाचारं विना देवि ! काली-मन्त्रं न सिद्धयति ॥
अभिषेकं विना देवि ! कुल-कर्म करोति यः ।
तस्य पूजादिकं कर्म चाभिचाराय कल्पते ॥
अभिषेकं विना देवि ! सिद्ध-विद्यां ददाति यः ।
तावत् कालं वसेद् घोरे यावच्चन्द्र-दिवाकरौ ॥
ब्रह्मत्वं च हरित्वं च शिवत्वं च कुलेश्वरि !
सर्व-सिद्धीश्वरत्वं च अभिषेकेन जायते ॥
दिव्यो वीरश्च देवेशि ! कुल-भक्ति-परायणः ।
अभिषेकं चरेद् धीमान् मोक्षार्थी कुल-कर्मसु ॥

विमुखः कुल-धर्मेषु कुल-द्रव्य-परायणः ।
स याति नरकं घोरं काकं वा पर-जन्मनि ॥
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन अभिषेकं समाचरेत् ।
अभिषेकं चरेद् देवि ! अधिवास-पुरःसरं ॥
वृद्धि-श्राद्धं ततः कुर्याच्छिव-शक्ति प्रपूजयेत् ।
गुरुं सम्पूज्य विधिवत् स्वर्णालङ्कार-भूषणैः ॥
ततः सङ्कल्प-विधिना गुरूणां वरणं चरेत् ।
ततः पूजां चरेद् देव्याः पञ्चमैश्च पृथक् पृथक् ॥
प्रणम्य सद्-गुरुं देव-देवीं च साधकेश्वरः ।
गुरु-पूजां विधायाथ देव्या ध्यान-परायणः ॥
अभिषेकं विधायाथ शुचौ देशे च देशिकः ।
शून्यागारे नदी-तीरे विल्व-मूले त्रिपान्तरे ॥
महा-त्रिपान्तरे * वापि निर्जने पितृ-कानने ।
ग्रामे पातालके वापि पर्वते तटिनी-तटे ॥
देवतायतने वापि स्थानं परिचिन्तयेत् ।
॥ इति श्री निरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे सप्तमः पटलः ॥

---

* त्रि-प्रहरान्तरे

अष्टमः पटलः

श्रीशिव उवाच—

शिव-शक्तिं च सम्पूज्य स्थापयेद् घटमुत्तमं ।
नाति-ह्रस्वं नाति-दीर्घं स्वर्ण-रौप्य-विनिर्मितं ॥
विशेषार्घ्यस्य यन्त्रे वा त्रिकोणे वापि विन्यसेत् ।
काम-वीजेन सम्प्रोक्ष्य वाग्भवेनैव ताडयेत् ॥
शक्त्याधारे समारोप्य मायया पूरणं जलैः ।
मन्त्रेणानेन तीर्थानि देशिकस्तु प्रविन्यसेत् ॥
ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वा समुद्राश्च सरांसि च ।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च जला ह्रदाः ॥
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्ग-पाताल-भूषिताः ।
सर्व-तीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिं ॥
श्री-वीजेन प्रजप्तेन पल्लवं प्रतिपादयेत् ।
कूर्चेन फल-दानं स्यात् स्त्री-वीजेन स्थिराचरेत् ॥
सिन्दूरः वह्नि-वीजेन पुष्पं प्रेतेन विन्यसेत् ।
मूलेन प्रणवेनापि दूर्वां दद्याद् विचक्षणः ॥
हूँ फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद् दर्भेण ताडनं ।
विचिन्त्य देवीं पीठं च तत्रावाह्य प्रपूजयेत् ॥
अनेनैव विधानेन सर्व-कर्मसु सुन्दरि !
घटं स्थाप्य यजेद् देवि ! षट्-कर्मसु विशेषतः ॥

महा-पूजां चरेद् धीमान् षोडशैरुपचारकैः ।
गुरूणां च महा-पूजा शक्तीनां च ततः परं ॥
तत्पश्चात् साधकानां च कुर्याच्च परि-पूजनं ।
कुमारीभ्यो बलिं दत्वा कुलजाभ्यो विशेषतः ॥
अभिषेकं ततो देवि ! कुर्याच्च गुरु-मार्गतः ।
स्वतन्त्रोक्त-विधानेन मन्त्रमुच्चारणैः सह ॥
चालयेत् तु घटं मन्त्री मन्त्रेणानेन देशिकः ।
उत्तिष्ठ ब्रह्म-कलस ! सेवितोऽशेष-सिद्धिद ॥
सर्व-तीर्थाम्बु-पूर्णेन पूरयामि मनोरथं ।
ईशानेन्दु-स्मर-क्षौणी तदन्ते भुवनेश्वरी ॥
मन्त्रेणानेन वाद्यानां निर्घोषैश्चानयेद् घटं ।
अभिषिञ्चेद् गुरुः शिष्यं यजमानं पुरोहितः ॥
सिञ्चेद् दुष्ट-ग्रहेऽश्वत्थैः पल्लवैर्भूत-सङ्गमे ।
सिञ्चेदौडुम्बरैर्मन्त्र-दोषे च करवीरजैः ॥
यशो-धनाय तेजस्वी फल-कामे च भूतकैः ।
तुलसी-मञ्जरीभिश्च सर्व-पाप-क्षयार्थिभिः ॥
सर्व-तीर्थ-फलावाप्तेः शाक्तानां विल्व-सम्भवैः ।
अभिचारे नारसिंहैरभिषेकं प्रचक्ष्यते ॥
कुर्यात् दर्भेषु गर्भेषु दोषेषु स्वीकृतेषु च ।
असौभाग्येन नारीणां दूर्वाभिः सेचनं चरेत् ॥
(अथवा) सर्व-कार्येषु सिद्धार्थैर्दूर्वया चूत-पल्लवैः ।

अस्याभिषेकस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिरनुष्टुप्छन्दः,

शक्तिर्देवता सर्वं-सङ्कल्प-सिद्ध्यर्थे विनियोगः ।

ॐ राज-राजेश्वरी शक्ति-भैरवी काल-भैरवी ॥
श्मशान-भैरवी देवी त्रिपुरानन्द-भैरवी ।
त्रिपुटा त्रिपुरा-देवी तथा त्रिपुर-सुन्दरी ॥
त्रिपुरेशी महादेवी तथा त्रिपुर-मालिका ।
त्रिपुरा-नन्दिनी देवी तत्रैव त्रिपुरातनी ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।
छिन्नमस्ता महादेवी तथा चैकजटेश्वरी ॥
तारा च जयदुर्गा च शूलिनी भुवनेश्वरी ।
हरिताख्या महादेवी तथा च रति-घण्टिका ॥
नित्या च नित्य-रूपा च वज्र-प्रस्तारिणी तथा ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥
अश्वारूढा महा-देवी तथा महिष-मर्दिनी ।
दुर्गा च नव-दुर्गा च श्रीदुर्गा भग-मालिनी ॥
तथा भग-देवी देवी भग-क्लिन्ना तथा परा ।
सर्व-चक्रेश्वरी देवी तथा दक्षिण-कालिका ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।
क्षेमङ्करी महा-काली चानिरुद्धा सरस्वती ॥
मातङ्गी चान्नपूर्णा च राज-राजेश्वरी तथा ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥
उग्र-चण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्ड-नायिका ।
चण्डा चण्ड-वती चैव चण्ड-रूपाति-चण्डिका ॥

एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।
उग्र-दंष्ट्रा महा-दंष्ट्रा सु-दंष्ट्रा तु कपालिनी ।।
भीम-नेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।
मङ्गला नन्दिनी भद्रा लक्ष्मीः कीर्तिर्यशस्विनी ।
पुष्टिर्मेधा शिवा साध्वी यशः शोभा जया धृतिः ।।
आनन्दा च सुनन्दा च नन्दिन्यानन्द-पूजिता ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।।
विजया मङ्गला भद्रा स्मृतिः शान्तिः क्षमा धृतिः ।
सिद्धिस्तुष्टी रमा पुष्टिः श्रीः सिद्धिश्च रतिस्तथा ।।
दीप्ता कान्तिर्यशो-लक्ष्मीरीश्वरी बुद्धिरेव च ।
शक्री माया रतिर्ब्राह्मी जयन्ती चापराजिता ।।
अजिता मानवी श्वेता प्रीतिस्त्वदितिरेव च ।
माया चैव महा-माया मोहिनी क्षोभिणी तथा ।।
कमला विमला गौरी लावण्याम्बुधि-सुन्दरी ।
दुर्गा क्रियारुन्धती च तथैव विग्रहात्मिका ।।
चर्चिका चापरा ज्ञेया तथैव सुर-पूजिता ।
वैवस्वती च कौमारी तथा माहेश्वरी परा ।।
वैष्णवी च महालक्ष्मीः कार्तिकी कौशिकी तथा ।
शिव-दूती च चामुण्डा मुण्ड-माला-विभूषिता ।।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।
इन्द्रो-वह्निर्यमश्चैव नैरृतो वरुणस्तथा ।।

पवनो धनदेशानो ब्रह्मानन्दो दिगीश्वराः।
सम्वत्सराश्चायने च मास-पक्ष-दिनानि च ॥
तिथयश्चाभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा।
रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनैश्चरः ॥
राहुः केतुश्च सततमभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः।
नक्षत्रं करणं योगोऽमृत-सिद्धिस्ततः परम् ॥
दग्धं पापं तथा भद्रा योगो वाराः क्षणास्तथा।
वारं-वेला काल-वेला दण्डा राश्यादयस्तथा ॥
अभिषिञ्चन्तु सततं मन्त्र-पूतेन वारिणा।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्त-संज्ञकः ॥
कपाली भीषणाख्यश्च संहारोऽष्टौ च भैरवाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥
डाकिनी-पुत्रिका चैव राकिणी-पुत्रिका तथा।
ततश्च रङ्किणी-पुत्री देवी-पुत्री ततः परं ॥
मातृ्णां च तथा पुत्री चोर्ध्व-मुख्याः सुताश्च याः।
अधोमुख्याः सुताश्चैव व्याल-मुख्याः सुताः पराः ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा।
पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकाराश्चैव षोडश ॥
आत्मा परात्मा जीवात्मा ज्ञानात्मा परमात्मनः।
आत्मानश्चात्मनश्चैव स्थूल-सूक्ष्माश्च येऽपरे ॥

एते त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।
वेदादि-वीजं हुं वीजं स्त्री-वीजं तन्निकेतनं ॥
शक्ति-वीजं रमा-वीजं सुधा-वीजं च केवलं ।
चिन्ता-रत्नं महा-वीजं नारसिंहं च तारकं ॥
मार्तण्ड-भैरवं दौर्ग-वीजं श्रीपुरुषोत्तमं ।
गाणपत्यं च वाराहं काली-वीजं भयापहं ॥
त्वामेवमभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ।
वह्निश्च वह्निजाया च वषट् कूर्चमतः परं ॥
वौषट्-कारं तु फट्-कारमभिषिञ्चन्तु सर्वदा ।
नश्यन्तु प्रेत-कूष्माण्डा राक्षसा दानवाश्च ये ॥
पिशाच-गुह्यका भूता अभिषेकेन तर्पिताः ।
अलक्ष्मीः काल-कर्णी च पापानि सुमहान्ति च ॥
नश्यन्तु चाभिषेकेन तारा-वीजेन ताडिताः ।
रोगाः शोकाश्च दारिद्र्यं दौर्बल्यं चित्त-विभ्रमं ॥
नश्यन्तु चाभिषेकेन मन्मथेन च ताडिताः ।
तेजो ह्रासो बुद्धि-ह्रासः शक्ति-ह्रासस्तथैव च ॥
नश्यन्तु चाभिषेकेन शक्ति-वीजेन ताडिताः ।
निरामिषा महा-रोगा डाकिन्यो मातरस्तथा ॥
घोराभिचाराः क्रूराश्च ग्रह-नागास्तथैव च ।
नश्यन्तु चाभिषेकेन काली-वीजेन ताडिताः ॥
नश्यन्तु विपदः सर्वे सम्पदः सन्तु सुस्थिराः ।

पूर्णाभिषेके शाक्तानां पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥
एवमासिञ्च्य शिष्यं तु पुनः पूजां समारभेत् ।
शिष्योऽपि तत्र सम्पूज्य गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥
गो भूमिः स्वर्ण-रूप्यं च नाना-रत्नानि पार्वति !
सर्वस्वं वा तदर्द्धं वापि दक्षिणा ॥
श्रीविद्यां सिद्ध-कालीं च तारां वा महिष-मर्दिनीं ।
शिष्याय भक्ति-युक्ताय प्रदद्यात् देशिकः स्वयं ॥
श्रीविद्यां कालिकां तारां यो जपेत् परमेश्वरीं ।
तस्मै नैव प्रदातव्यं आसां मन्त्रं विना प्रिये ॥
प्रणम्य दण्ड-वद् भूमौ ततश्च परि-कल्पयेत् ।
त्रैलोक्ये योषितां नाथ ! किं करोमि वदस्व मे ॥

श्रीगुरुरुवाच—

कुलाचारं च भो वत्स ! सुगोप्यं कुरु सर्वतः ।
स्व-शक्ति कौलिकीं कृत्वा तत्र पूजां प्रकल्पयेत् ॥
सिद्ध-मन्त्रो यजेच्छक्ति कायेन मनसापि वा ।
पर-योषां विशेषेण सिद्ध-मन्त्री प्रपूजयेत् ॥
एतानि कुल-कर्म्माणि गुरुभिरुदितानि च ।
यावन्नैव सिद्ध-मन्त्री तावच्च स्व-कुलं व्रजेत् ॥
॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिवपार्वतीश-सम्वादे अष्टमः पटलः ॥

नवमः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव महादेव सर्व-सिद्धीश्वर प्रभो !
सिद्ध-मन्त्री भवेत् केन कर्मणा वद मे प्रभो ॥

श्रीशिव उवाच—

आनीय मङ्गलं रम्यं कुल-भक्तं कुलार्चने ।
स्व-चक्रं विविधं कृत्वा शक्ति-भाले लिखेत् ततः ॥
तत्र काम-कलां देवीं वीर-कोणे लिखेत् प्रिये !
तन्मध्ये देव-मन्त्रं च विहितं काम-लाञ्छितं ॥
तत्र देवीं समावाह्य ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत् ।
ततो लक्षं च संजप्य स्थिर-धीः कुल-साधकः ॥
ततस्तच्छक्ति-कर्णे च ऋषिच्छन्दः समन्वितं ।
मूल-मन्त्रं त्रिधावृत्या कथयेद् वाम-कर्णके ॥
अद्य प्रभृति शक्तिस्त्वं कुल-देवार्चनं चर ।
गुरोराज्ञां समादाय घृणा-लज्जा-विवर्जिता ॥
शिवोक्त-विधिना सैव करिष्यामि कुलार्चनं ।
त्राहि नाथ ! कुलाचार-कामिनी - काम-नायक ॥
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां देहि मे कुल-वर्त्मनि ।
गते च प्रथमे यामे स्व-कुलं कुलिकोपरि ॥
वाम-भागे समासीनं रक्त-वस्त्र-समन्वितं ।
नाना गन्ध-समायुक्तं नाना रत्नेन भूषितं ॥

ललाटे मन्त्रमालिख्य मध्ये नाम विदर्भितं ।
ताम्बूल-पूरित-मुखस्ताम्बूलारुण-लोचनः ॥
कुलाकुल-जपं कृत्वा ध्रुवमायाति तत्क्षणात् ।
एवमाकर्षितो मन्त्री सिद्ध-मन्त्रो कुलेश्वरि ॥
तावत् प्रयोगः कर्तव्यो यावत् सिद्धिर्न जायते ।
सिद्ध-मन्त्री कुलाचारे पर-योषां प्रपूजयेत् ॥
सिद्ध-मन्त्री श्मशाने च पर-योषां प्रपूजयेत् ।
योषिदाकर्षणादेव कन्यां चैवावकर्षयेत् ॥
देव-कन्याकर्षणेन देवतां कर्षयेत् तदा ।
आकर्षण-प्रसादेन शिव एव प्रजायते ॥
आकर्षणं विना गच्छेत् तच्छक्ति कौलिकीं परां ।
आकर्षणाद् भवेत् सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥
आकर्षणाच्च निर्वाणं लभते नात्र संशयः ।
यावन्न पूजये द्देवीं रजनीं कुल-मन्दिरे ॥
निर्वाणमपि चाङ्गस्य तावदाविर्भवेत् पुनः ।
प्रकृत्या जायते विश्वं प्रकृत्या च विलीयते ॥
शैवानां वैष्णवानां च सौराणां च महेश्वरि !
स्याच्च निर्वाणमेतेषां मातुराविर्भवन्ति हि ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
सर्वे मुक्ति-प्रदा देवा निर्वाणं श्रेयसं विनां ॥
निर्वाणं श्रेयसं देवि ! प्रकृत्या परिजायते ।

तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन प्रकृतिं परिपूजयेत् ॥
प्रकृतिर्या महामाया सैव प्रकृति-रूपिणी ।
विकृतौ मन्त्र-सिद्धिः स्यात् प्रकृतेः कुहकं गृहे ॥
निर्वाणं श्रेयसं सैव प्रकृतेः कुहकं विना ।
लिखनं मन्त्र-यन्त्राणां पूजनं च जपं प्रिये ॥
नियतं गुरु-मार्गेण साधको विजने चरेत् ।
सङ्ग-हीनैः सदा कार्यं सङ्गेन नरकं व्रजेत् ॥
प्रकृतेर्योषितां वृन्दं विकृतिः पाञ्च-भौतिकी ।
तच्चक्रं सिद्धि-मूलं च मन्त्र-यन्त्र-विलेखनात् ॥
मन्त्र-यन्त्रं विना देवि ! कुहकं विकृतेर्यदि ।
न गच्छेत् साधको वीरो न गच्छेन्नरकं व्रजेत् ॥
प्रकृतेः कुहकं योनौ यन्त्रे भाले च पार्वति !
असंलिख्य यन्त्राणि दैन्यं गच्छेत् कुल-साधकः ॥
कामाद्वा मोहतो वापि लोभाद्वा वर-वर्णिनि !
प्रकृतेः कुहकं यन्त्रे यजेच्च नरकं व्रजेत् ॥
सिद्धि-मूलं कुलेशानि ! विकृतेः कुहकं स्मृतं ।
तत्र सम्मोहयेत् सर्वं जगदेतच्चराचरं ॥
विकृतेः कुहकापन्नो मन्त्र-तन्त्र-विशारदः ।
तद्वरं च परिज्ञाप्य निर्वाणं श्रेयसं व्रजेत् ॥
ब्रह्मणि न न वा विष्णौ न गणेशे षडानने ।
प्रकृतेः कुहकं दानं न कुत्रापि प्रकाशितं ॥
॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-संवादे नवमः पटलः ॥

दशमः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

शक्तिर्नाना विद्या प्रोक्ता संशयो जायते सदा।
कुलीनां कीदृशीं देवीं ब्राह्मणः पूजयेत् सदा॥

श्रीशिव उवाच—

सर्व-जात्युद्भवा शक्तिर्योगिभिः पूज्यते सदा।
यां यां पश्यति योगीन्द्रस्तां तामेव प्रपूजयेत्॥
वीर-शक्तिर्विशेषेण शृणुष्व वर-वर्णिनि!
पुरश्चर्या कृता वीराः प्रशस्ता वीर-साधने॥
पुरश्चर्या-विहीनाश्चेन्न योज्याः कुल-साधने।
योज्यश्चेत् सिद्धि-हानिः स्याद् रौरवं नरकं व्रजेत्॥
वीर-शक्ति विना देवि! न कुर्यात् कुल-साधनं।
तदभावे हीन-जातौ प्रशस्ता वीर-साधने॥
पञ्च-चक्रे प्रशस्ता यास्ताः शृणुष्व वरानने!
चक्रं पञ्च-विधं प्रोक्तं तत्र शक्ति प्रपूजयेत्॥
राज-चक्रं महा-चक्रं देव-चक्रं तृतीयकं।
वीर-चक्रं चतुर्थं च पशु-चक्रं च पञ्चमं॥
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च पञ्च-चक्रे प्रपूजयेत्॥
बलीयसी च देवेशि! वीर-चक्रे प्रपूजयेत्।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वीर-चक्रेण पूजयेत्॥

योगिभिः पूज्यते देवि ! सर्व-चक्रेषु कामिनी ।
माता च भगिनी चैव दुहिता च स्नुषा तथा ॥
गुरु-पत्नी च पञ्चैता राज-चक्रे प्रपूजयेत् ।
गौरी वाप्यथवा साध्वी सुरा शस्ता कुलेश्वरी ॥
शुद्धिश्छागोद्भवा शस्ता तृतीया वेद-सम्भवा ।
मुद्रा गोधूमजा शस्ता स्वयम्भू-कुसुमस्तथा ॥
कुण्ड-गोलोद्भवं द्रव्यं अनुकल्पं नियोजयेत् ।
रक्त-चन्दनं तथा श्वेतमनुकल्पं च चन्दनं ॥
वस्त्रालङ्कार-भूषाद्यैर्गन्ध-माल्यानुलेपनं ।
पूजयेत् परया भक्त्या देवताभ्यो निवेदयेत् ॥
भक्ष्यं नाना-विधं द्रव्यं नाना-वस्त्र-समन्वितं ।
आसवं शुद्धि-संयुक्तं ताभ्यो दद्यात् पुनः पुनः ॥
प्रणम्य प्रजपेन्मन्त्रं दृष्ट्वा ताश्च सहस्रकं ।
अङ्गं नैव स्पृशेत् तासां स्पृशेच्च नरकं व्रजेत् ॥
मधु-मत्ता यदा तास्तु न स्वपन्ति सुसम्पदः ।
तत्तदैवं भवेत् सर्वं सत्यं सत्यं न संशयः ॥
षष्टि-वर्ष-सहस्राणि ब्रह्म-लोके महीयते ।
माता भग्नी स्नुषा कन्या वीर-पत्नी कुलेश्वरि ॥
महा-चक्रे यजेदेताः पञ्च-शक्तीः पुनः पुनः ।
द्रव्या-दाने तु सम्पूज्या न शक्तौ शिव-योजनं ॥
योजयेत् सिद्धि-हानिः स्याद् रौरवं नरकं व्रजेत् ।

महा-व्याधिर्भवेद् देवि ! धन-हानिः प्रजायते ॥
सदैव दुःखमाप्नोति सर्वं तस्य विनश्यति ।
आद्यं च गौड़िकं प्रोक्तं द्वितीयं कुक्कुटोद्भवं ॥
तृतीयं रोहितं प्रोक्तं चतुर्थं माष-सम्भवं ।
करवीरोद्भवं पुष्पं चन्दनं रक्त-चन्दनं ॥
पूजयेत् परया भक्त्या शिव-लोके महीयते ।
षष्टि-वर्ष-सहस्राणि तत्र देवीं प्रपूजयेत् ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां अमायां च कुजेऽहनि ।
राज-चक्रे महा-चक्रे भक्त्या शक्तीः प्रपूजयेत् ॥
शुक्ल-पक्षे गुरोर्वारे चतुर्थी-सप्तमी-तिथौ ।
महा-चक्रे यजेद् भक्त्या सर्व-कामार्थ-सिद्धये ॥
देव-चक्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व वर-वर्णिनि !
विदग्धा सर्व-जातीनां पञ्च-कन्याः प्रकीर्तिताः ॥
गौडिकं फलजं रम्यं द्वितीयं पक्षि-सम्भवं ।
तृतीयं शाल-मत्स्यं तु चतुर्थं धान्य-सम्भवं ॥
सुगन्धि-गन्ध-पुष्पं च देव-चक्रे नियोजयेत् ।
देव-चक्रे यजेच्छक्ति देव-लोके महीयते ॥
षष्टि-वर्ष-सहस्राणि देव-कन्याः प्रपूजयेत् ।
पञ्च-कन्या यजेच्चक्रे नातिरिक्तां कदाचन ॥
लोभाद्वा कामतो वापि छलाद्वा वर-वर्णिनि !
यदि स्यात् सङ्गमं तासां रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
पितृ-भूमिं समागम्य वीर-चक्रे प्रपूजयेत् ॥
दिव्य-वीरान्वितो मन्त्री यजेच्छक्तिं बलीयसीं ।

श्रीदेव्युवाच—

मात्रादयः पञ्च-कन्या यतीनां च कथं प्रभो ?

श्रीशिव उवाच—

मात्रादयः पञ्च-कन्या हीन-जातायते प्रिये !
चतुर्वर्णोद्भवां वेश्यां विशेषेण बलीयसीं ॥
भूमीन्द्र-कन्यका माता दुहिता रजकी-सुता ।
श्वपची च स्वसा ज्ञेया कापाली च स्नुषा स्मृता ॥
योगिनी निज-शक्तिः स्यात् पञ्च-कन्याः प्रकीर्तिताः ।
गुरोः समीपे कर्तव्यमथवा भ्रातृभिः सह ॥
सिद्ध-मन्त्री भवेद् वीरो न वीरो मद्य-पानतः ।
अभिषिक्तो भवेद् वीरो अभिषिक्ता च कौलिकी ॥
एवं च वीर-शक्तिं च वीर-चक्रे नियोजयेत् ।
क्रम-सङ्केतकं चैव पूजा-सङ्केतमेव च ॥
मन्त्र-सङ्केतकं चैव यन्त्र-सङ्केतकं तथा ।
लिखनं मन्त्र-यन्त्राणां सङ्केतं गुरु-मार्गतः ॥
सङ्केतज्ञं विना वीरं यदि चक्रे नियोजयेत् ।
निष्फलं पूजनं देवि ! दुःखं तस्य पदे पदे ॥

सङ्केत-हीनो यो वीरो नाभिषेकी गुरुः क्रमात् ।
कुल-भ्रष्टः स पापिष्ठस्तं त्यजेद् वीर-चक्रके ॥
नाभिषिक्तो वसेच्चक्रे नाभिषिक्ता च कौलिकी ।
वसेच्च रौरवं याति सत्यं सत्यं न संशयः ॥
एवं क्रमं विना देवि ! वीर-चक्रे वसेद् यदि ।
सिद्धि-हानिं सिद्धि-हानिं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
सर्व-मद्यं सर्व-शुद्धिं सर्व-मीनं कुलेश्वरि !
सर्व-मुद्रां सर्व-पुष्प स्वयम्भू-कुसुमं तथा ॥
कुण्ड-गोलोद्भवं द्रव्यं नाना-रस-समन्वितं ॥
प्रदद्यात् साधक-श्रेष्ठो वीर-चक्रे पुनः पुनः ॥
स्व-शक्ति पूजयेत् तत्र तदुच्छिष्टं पिबेत् प्रिये !
चर्व्यं च ज्येष्ठतो ग्राह्यं कनिष्ठाय निवेदयेत् ॥
एकासने न भुञ्जीत भोजनं नैक-भाजने ।
परस्परमुप-स्पर्शं न कर्तव्यं कदाचन ॥
एवं क्रमेण देवेशि ! वीर-चक्रं समाचरेत् ।
आनीय हीनजां देवीं शक्ति-मन्त्रेण शोधयेत् ॥
संशोध्य हीनजां पूजां वीर-शक्तिं निवेदयेत् ।
मधु-सक्ताय वीराय यो दद्याद् हीनजां सुतां ॥
वक्त्र-कोटि-सहस्रेण तस्य पुण्यं न गद्यते ।
वीराय शक्ति-दानं तु वीर-चक्रे विधीयते ॥

❀ निरुत्तर तन्त्रम् : दशमः पटलः ५ ।

चक्र-भिन्ने चरेद् दानं रौरवं नरकं व्रजेत् ।
घातयेद् गोपयेद्वापि न निन्देन्न निरीक्षयेत् ॥
कामं क्रोधं च मात्सर्यं विकारं लोभमेव च ।
कुत्सा निन्दा दुरालापं गोपयेदष्टकं प्रिये ॥
मन्त्रं मुद्रामक्ष-मालां योनिं च वीर-सङ्गमं ।
मण्डलं च घटं पीठं सिद्धि-द्रव्याणि गोपयेत् ॥
पण्डितं वीर-सन्तानं क्षेत्रं देवीं च योगिनीं ।
कुलाचारं गुरु-दूतीं मनसापि न निन्दयेत् ॥
मातृ-योनिं पशु-क्रीडां नग्नां स्त्रीमुन्नत-स्तनीं ।
कान्तेन क्षोभितां कान्तां कामतो नावलोकयेत् ॥
देवीं गुरुं ,सुधां विद्यां श्रेष्ठां शक्तिं क्रियात्मजां ।
योगिनीं भैरवी-तत्वं अष्ट-तत्वं प्रपूजयेत् ॥
विमाता दुहिता भग्नी स्नुषा पत्नी च पञ्चमी ।
पशु-चक्रे यजेद् धीमान् पशुवत् तोषणं चरेत् ॥
गन्ध-पुष्पं च माल्यं च वस्त्राद्याभरणानि च ।
सिन्दूरागुरु-कस्तूरी नाना पुष्पाणि सुन्दरि ॥
भक्ष्यं नाना-विधं द्रव्यं फलं नाना-विधं प्रिये !
एतद्-द्रव्य-गणं यस्तु भक्त्या ताभ्यो निवेदयेत् ॥
षष्टि-वर्ष-सहस्राणि क्षितौ राजा भवेद् ध्रुवं ।
वीर-चक्रे मन्त्र-सिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥
अमावास्यां चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
श्मशानेन गतेनार्चेत् सूचितं न प्रकाशितं ॥

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे दशमः पटलः ॥

एकादशः पटलः

श्रीदेव्युवाच–

योगिनां साधनं देव ! सूचितं न प्रकाशितं ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कृपया कथय प्रभो ॥

श्रीशिव उवाच–

आत्मनो ज्ञान-मात्रेण तत्व-ज्ञानं भवेत् प्रिये !
तत्त्व-ज्ञानी भवेद् योगी स योगी त्रि-विधः स्मृतः ॥
निरालम्बश्च सालम्बो भक्तश्च परमेश्वरि !
भक्तोऽपि वीर-भावेन साधयेत् कुल-साधनं ॥
शक्ति-मात्रं यजेद्योगो भक्तो योग-परायणः ।
आत्मन्येवात्मनो योगं शक्तौ वा शिव-योजनं ॥
अभिषेकेण देवेशि ! भैरवो जायते भुवि ।
अवधूतो भवेद् वीरो दिव्यश्च कुल-सुन्दरि ॥
श्मशानागम-निष्ठश्च कुल-योषित्-परायणः ।
कुल-शास्त्रार्थ-सम्वक्ता बलिदान-रतः सदा ॥
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारो निर्लोभो निर्भयः शुचिः ।
गुरु-देव-रतः शान्तो घृणा-लज्जा-विवर्जितः ॥
रक्त-चन्दन-लिप्ताङ्गो रक्त-कौपीन-भूषणः ।
उदार-चित्तः सर्वत्र वैष्णवाचार-तत्परः ॥

कुलाचार-रतो वीरः पण्डितः कुल-वर्त्मनि ।
कुल-सङ्केत-सम्वेत्ता कुल-शास्त्र-विशारदः ॥
महा-बलो महा-बुद्धिर्महा-साहसिकः शुचिः ।
नित्य-कर्मणि निष्ठातो दम्भ-हिंसा-विवर्जितः ॥
पर-निन्दा-सहिष्णुः स्यादुपकार-रतः सदा ।
वीरमासनमासीनः पितृ-भूमि-गतः शुचिः ॥
सर्वदानन्द-हृदयः कुमारी-पूजने रतः ।
एवं यदि भवेद् वीरस्तदैव हीनजां यजेत् ॥
दिव्योऽपि वीर-भावेन साधयेत् कुल-साधनं ।
कुलं च सर्व-जातीनां पूजनीयं कुलार्चने ॥
सिद्ध-विद्या विशेषेण सिद्धिदा कुल-पूजने ।
श्मशाने निर्जने रम्ये त्रिपान्ते शून्य-मण्डले ॥
ग्रामे पातालके वापि साधयेत् कुल-साधनं ।
बलि-दानं विना पानं श्मशान-गमनं बिना ॥
जप-पूजादिकं कर्म त्वभिचाराय कल्प्यते ।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन बलि-दानं समाचरेत् ॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तत्र भावे ततः परं ।
ततो विकट-दंष्ट्रे च पर-पक्षं मोहय-द्वयं ॥
खादय-द्वयमुक्त्वा च पर-पक्ष-द्वयं तथा ।
या मां हिंसितुमुद्यता च योगिनी च हर-हर हुं फट् ततः परं

वह्नि-जाया ततो देवि ! पर-विद्यां ततः परं ।
आकर्षय ततो देवि ! छेदक-कपालिने ।।
गृह्ण-द्वयं वह्नि-जाया अनेन बलिमाहरेत् ।
अनेन बलि-दानं तु कुल-कर्म-सुसिद्धये ।।
त्रिपान्तरे श्मशाने वा बलिं दद्याज्जपेन्मनुं ।
महा-त्रिपान्तरे दत्वा किं न सिद्धयति भू-तले ।।
बलि-दानं विना किञ्चित् साधनं नैव साधयेत् ।

श्रीदेव्युवाच—

साधकः कथितो देव ! साधिका कीदृशी प्रभो ?

श्रीशिव उवाच—

निर्लोभा कामना-हीना निर्लज्जा दम्भ-वर्जिता ।
शिव-सङ्ग-गता साध्वी स्वेच्छया विपरीतगा ।।
चतुर्वर्णोद्भवा रम्भा प्रशस्ता कुल-पूजने ।
चतुर्वर्णोद्भवानां च पुरश्चर्या विधीयते ।।
वर्ण-सङ्करतो जाता हीनजा परिकीर्तिता ।
लज्जा-लाञ्छित-भाला या सा साक्षाद् भुवनेश्वरी ।।
नाना-जात्युद्भवानां च सा दीक्षा कुल-पूजने ।
ब्राह्मणो हीनजां देवीं मनसा वा प्रपूजयेत् ।।
अज्ञात्वा कौलिकीं देवीं पशु-वत् परि-पूजयेत् ।
पशु-वत् पूजयेद् वीरो दीक्षितां वाप्यदीक्षितां ।।
शक्ति-मात्रं यजेद् वीरः प्राप्त-योग-मनाः स्मरेत् ।
अष्टोत्तर-शतं देवि ! तद्-योगं सुरतो जपेत् ।।

प्रणम्य मनसा देवीं चुम्बनं मनसा स्मरेत् ।
सुन्दरीं नागरीं दृष्ट्वा एवं सञ्चिन्तयेन्नरः ।।
स एव कालिका-पुत्रः सदा-शिव इहापरः ।
हट्टे वा मन्दिरे रम्ये त्रिपान्ते पथि चान्तरे ।।
दृष्ट्वा च सुन्दरीं रम्यां मनसा च प्रपूजयेत् ।
तद्-योगं मनसा स्मृत्वा जपेदष्टोत्तरं शतं ।।
जपं समर्प्य तां चुम्ब्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।
भक्ष्य-द्रव्यं ततस्ताभ्यो भक्त्या च विनिवेदयेत् ।।
यदा द्रव्याणि गृह्णन्ति तदा सिद्धिर्भवेद् ध्रुवं ।
यदि भाग्य-वशेनैव हीनजां कौलिकीं परां ।।
पूजयेन्मनसा वाचा तत्त्वं विचिन्तयेत् ।
अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा चुम्बयित्वा पुनः पुनः ।।
पुनस्तत्त्वं चरेत् तत्र जप-संख्या रसातलं ।
ततस्तु पूर्व-वत् कृत्वा पुरश्चरणमुच्चरेत् ।।
हीन-जाते तु संयुक्ता दीक्षिता सैव सर्वदा ।
शाङ्करी शक्तिका वापि वैष्णवी वाप्यवैष्णवी ।।
सर्वदा साधने योज्या साधकानां कुलार्चने ।
वाक्याद्वा क्रीडया वापि धनाद्वा मानसं नयेत् ।।
न दोषो द्रव्य-दाने च हीनजा कुल-साधने ।
विजया-रस-संयुक्ता हीनजा दीक्षिता सदा ।।
तद्-भाले विलिखेन्मायां ततः सा भुवनेश्वरी ।
हीनजा भाल-संयुक्ता भुवना भुवनेश्वरी ।।

हीनजा कुल-सामान्या कुल-चक्रं लिखेत् प्रिये !
तत्र पूजा चरेद् योगी गुरु-मार्ग-क्रमेण च ॥
अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा पुरश्चरणमुच्यते ।
अथवा शक्ति-भाले तु त्रिपञ्चारे लिखेत् प्रिये ॥
मनुं वापि त्रिकोणस्थं तत्र पूजादिकं चरेत् ।
वज्र-पुष्पेण संलिख्य वज्र-पुष्पेण पूजयेत् ।
तत्त्व-योगाज्जपेद् विद्यां कलौ कलुष-हारिणीं ।
अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा पुरश्चरणमुच्यते ॥
कुलजाष्ट-सुतां शुद्धां रजकीं योगिनीं तथा ।
नटीं कापालिकां वेश्यां शौण्डिकां श्वपचीं तथा ॥
विदग्धां हीनजां सर्वां पूजयेद् द्रव्य-दानतः ।
आसां भाले लिखेन्मायां ततस्ताः परिपूजयेत् ॥
सर्वथा दीक्षयेन्नैतां दीक्षयेन्नरकं व्रजेत् ।
नाना-जात्युद्भवा रम्भा हीनजा परिकीर्तिता ॥
चतुर्वर्णोद्भवा रम्भा दीक्षयेत् गुरु-मार्गतः ।
हीनजां यदि लभ्यते तदान्यां परि-चिन्तयेत् ॥
हीनजां पूजयेद् योगी निःसङ्गो निशि वारतः ।
हीनजां द्रव्य-दानेन तोषाय तत्व-चिन्तनात् ॥
तत्र मन्त्रं च यन्त्रं च लिखित्वा पूजयेद् यदि ।
स मुक्तः कालिका-पुत्रो न स भूमौ प्रजायते ॥

कामाख्या पूजिता येन स मुक्तो नात्र संशयः।
शक्ति-मन्त्रा न सिद्धयन्ति कामाख्या-पूजनं विना ।।
ब्राह्मणीं क्षत्रियां वैश्यां शूद्रां च वर-वर्णिनि !
नाहरेद् द्रव्य-दानेन हरेच्च नरकं व्रजेत् ।।
आकर्षिताय शिष्याय प्रत्यानुत्यां च दीक्षितां।
पूजयेत् परया भक्त्या तासां चाहं विशेषतः ।।
आसामभावे देवेशि ! स्व-शक्ति परि-पूजयेत् ।
स्व-शक्तौ सिद्ध-मन्त्री स्यात् पश्चाद् देवान् प्रपूजयेत् ।।
अङ्गावरण-पूजादौ यदि वा लक्षते कुलं।
तदैव हीनजां शक्ति शोधयेदुक्त-वर्त्मना ।।
हीनजां शोधयेदेकां सिद्ध-मन्त्री त्वलिप्सितः।
हीनजा सुप्रसन्ना चेत् सिद्धिर्भवति साधके ।।
सर्वदा हीनजां शक्ति सर्वत्रैव प्रपूजयेत् ।
गुरु-नाम च यन्त्रं च पूजयेत् कुल-मार्गिणं ।।
भैरवं भैरवीं तत्त्वं मनसा न प्रकाशयेत् ।
कन्या-कोटि-प्रदानेन हेम-भार-शतस्य च ।।
यत्फलं लभते देवि ! तत्फलं निज-मन्दिरे ।
प्रथमां द्वितीयामुक्तां शक्तिभ्योऽपि ददेद् यदि ।।
तृप्यन्ति देवताः सर्वा योगिन्यो भैरवादयः ।
पृथिवीं हेम-सम्पूर्णां दत्वा यत्फलमालभेत् ।।

तत्फलं कौलिकां गेहे पूजायां लभते ध्रुवं ।
अश्वमेधाधिकं पुण्यं कुलीनां गृह-दर्शनं ॥
गवां कोटि-प्रदानेन यत्फलं लभते नरः ।
तत्फलं हीनजा-गेहे लभते वात्र संशयः ॥
तिस्रः कोटयर्द्ध-कोटो च तीर्थ-स्नानेषु यत्फलं ।
तत्फलं लभते देवि ! कुलीनां यन्त्र-दर्शने ॥
कुलीनां यन्त्रमालिख्य यद्यत् कर्म समाचरेत् ।
तत्कर्म सफलं याति सत्यं सत्यं न संशयः ।
कुलीनां यन्त्रमालोक्य सर्व-पापैः प्रमुच्यते ।
शैवाः शाक्ताश्च सौराश्च वैष्णवाश्च कुलेश्वरि ॥
पूजयन्ति सदा भक्त्या कुलीनां गृह-मन्दिरे ।
सर्वेषां यन्त्र-मन्त्राणां दुर्गाधिष्ठातृ-देवता ॥
यतो वै जायते विश्वं तस्मात् तां परि-पूजयेत् ।
यन्त्र-पूजा-कृतो मन्त्री न स योनौ प्रजायते ॥
यन्त्र-पूजां विना देवि ! न शक्ति-पूजनं चरेत् ।

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे एकादशः पटलः ॥

द्वादशः पटलः

श्रीशिव उवाच—

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि साधनं भुवि दुर्लभं ।
येन कृते लभेत् सिद्धिं देवानामपि दुर्लभां ॥
ललाटे शक्ति-मन्त्रं तु त्रिरावृत्या लिखेद् बुधः ।
तन्मध्ये काम-वीजं च विलिखेत् काम-लाञ्छितं ॥
कामेन पुटितं कृत्वा पूजयेत् परमेश्वरीं ।
सम्पूज्य कालिकां देवीं यन्त्रं च परि-पूजयेत् ।
तत्त्व-चिन्ता-परो योगी जपेल्लक्षं निराकुलः ।
संगृह्य कुल-पुष्पं तु पूजयेच्च पुनः पुनः ॥
सहस्रं तर्पयेत् पीठे यन्त्र-प्रक्षालनोदकैः ।
एवं कृते लभेत् सिद्धिं सत्यं सत्यं न संशयः ॥
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि पुरश्चरणमुत्तमं ।
शतं भाले शतं केशे शतं सिन्दूर-मण्डले ॥
शतमेकं मुखाब्जेषु पुष्प-वक्त्रे शत-द्वयं ।
शत-द्वन्द्वं कुच-द्वन्द्वे शतं च नाभि - मण्डले ॥
शतमेकं कुलागारे प्रजपेद् भक्ति-भावतः ।
एवं दश-शतं जप्त्वा कुलागारे ततो जपेत् ॥
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं गजान्तक-सहस्रकं ।
ततस्तु तत्त्व-योगेन शतमष्टोत्तरं जपेत् ॥

पूजनं च पुनस्तत्र पुरश्चरणमुच्यते ॥
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि कुलागारस्य साधनं ।
येन कृते कुलेशानि ! सर्व-पाप क्षयो भवेत् ॥
कुलागारे कुलाष्टम्यां कुलमाहूय पूजयेत् ॥
तर्पणं च जपं होमं तत्तदक्षरतां व्रजेत् ।
कदली-तरु-मूलं च द्वि-गुणं यदि दृश्यते ॥
तत्रैव महती पूजा कर्त्तव्या वर-वर्णिनि !
तद्-धृते ब्रह्म-वक्त्रेण होमं कुर्याद् विचक्षणः ॥
होमं कृत्वा जपेन्मन्त्रं कोटि-कोटि-गुणं भवेत् ।
द्वि-गुणं रजनी-मूलं संवीक्ष्य यो जपेन्मनुं ॥
स भवेत् सर्व-सिद्धीशस्तस्य पुण्यं न विद्यते ॥
रजनी स्वेच्छयाहूय साधकं कुल-भूषणं ॥
विपरीता जपेन्मन्त्रं तस्याः पुण्यं न गण्यते ।
रजन्याथ कुलागारे पुलिने निपुणा यदि ॥
तत्समा रजनी कान्ता कमला वाथ राधिका ।
त्रिषु लोकेषु सा धन्या ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका ॥
सिद्ध-विद्या महा-विद्या मन्त्र-यन्त्र-फल-प्रदा ।
तस्याः प्रसाद-मात्रेण दुष्ट-मन्त्रोऽपि सिद्ध्यति ।
तस्मात् सर्व - प्रयत्नेन तामेव शरणं व्रजेत् ।
-जन्यां रजनी-योगं विहरेद् यदि साधकः ॥

जपेद्वा पूजयेत् तत्र सर्वं तत् निष्फलं भवेत् ।
येन तेन प्रकारेण रजनी-तोषणं चरेत् ॥
बाह्याद्वा क्रीडनाद्वापि रणाद्वा तोषयेत् सदा ।
यं यं भावं रजन्यां च तं तं भावं प्रकल्पयेत् ॥
अतिरिक्तः कृतो भावो रौरवं नरकं व्रजेत् ।
कलायाः सम्मतिं कृत्वा साधयेत् कुल-साधनं ॥
अन्यथा नरकं याति सत्यं सत्यं न संशयः ।
कलापि साधकं ज्ञात्वा सम्मतिं नैव जायते ॥
सा चैवं नरके घोरे वसेदेव न संशयः ।
उभयोः सम्मतिं ज्ञात्वा साधयेत् कुल-साधनं ॥
असम्मत-कुला-सङ्गात् सिद्धि-हानिः प्रजायते ।
यो गच्छेद् रजनी-गेहं कुल-साधन-वर्जिते ॥
स एव नरकं याति सत्यं सत्यं न संशयः ।
क्रोधाद्वा कामतो वापि द्वेषाद्वा वर-वर्णिनि ॥
न गच्छेद् रजनी-गेहं गच्छेच्च नरकं व्रजेत् ।
अज्ञात्वा कुल-सङ्केत कुल-मार्गं विशेद् यदि ॥
स याति नरकं घोरं का कथा पर-जन्मनि ।
गुरुं विलंघ्य शास्त्रेऽस्मिन् नाधिकारो कदाचन ॥
गुरोराज्ञां समादाय कुल-पूजां चरेत् सुधीः ।
पशोर्वापि शठाद्वापि धूर्ताद्वा चुल्लुकादपि ॥

न गृह्णीयात् सिद्धि-विद्यां गृह्णीयाद् दुःख-भाग् भवेत् ।
मधु-लुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ॥
ज्ञान-लुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत् ॥
कुलीनस्तन्त्र-मन्त्राणां अधिकारीति गीयते ।
आजन्म च परं वस्तु कुलीनाय निवेदयेत् ॥
शुभे मासि शुभे पक्षे शुभे लग्ने शुभे दिने ।
पूर्वोक्त-मन्त्र-ज्ञानेन घटं संस्थापयेत् ततः ॥
भूर्ज-पत्रेण संलिख्य घटे संस्थाप्य यत्नतः ।
तत्र पूजां चरेद् धीमान् महा-चीन-क्रमेण च ॥
पूजयित्वा ततो देवीं गुरुः सूयं विचिन्तयेत् ।
ततः कुलीनामाश्रित्य मन्त्रं तन्त्रं विलोकयेत् ॥
अभिषेकं च तत्रैव कुर्यात् कुल-परायणः ।
पशोर्वा चुल्लुकाद् वापि धूर्ताद्वा कुल-पामरात् ॥
सिद्धि-विद्यां न गृह्णीयात् गृह्णीयान्नरकं व्रजेत् ।
जप-पूजां तथा होमं साधनं सर्व-कर्मसु ॥
सर्वं च निष्फलं याति दुःखं तस्य पदे पदे ।
कुल-द्रव्याणि देवेशि ! पश्वादिभ्यो न दर्शयेत् ॥
तर्पयेत् सिद्धि-हानिः स्यात् रौरवं नरकं व्रजेत् ।
कुल-पूजादिकं कर्म पशोरग्रे चरेद् यदि ॥

तत्कर्म निष्फलं याति का कथा पर-जन्मनि ।
पशोरालापनाद् देवि ! कुल-कर्म प्रणश्यति ॥
पशोर्दर्शन-मात्रेण सूर्य-दर्शनमाचरेत् ।
स एव द्विविधो देवि ! दीक्षितोऽदीक्षितः पशुः ॥
दीक्षितो हि भवेत् पूर्वोऽदीक्षितो हि महा-पशुः ।
पूर्व-सङ्गात् कुलेशानि ! सिद्धि-हानिः प्रजायते ॥
महा-पशु-समायोगान्न कुलं शरणं व्रजेत् ।
पशु-मात्र-समायोगात् प्रेत-राज्याधिपो भवेत् ॥
पशु-मात्र-समायोगात् कुल-कर्म प्रणश्यति ।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत् ॥
कुलीन-सेवितस्यापि मन्त्र-सिद्धिः प्रजायते ॥
पशुं शठं च धूर्तं च चुल्लुकं च विशेषतः ॥
धर्मार्थ-काम-मोक्षार्थी गुरुत्वेन न चार्चयेत् ।

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे द्वादशः पटलः ॥

त्रयोदशः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

तासां च सिद्धि-विद्यानां यस्या या याः प्रपूजिताः ।
तास्ताः शक्ति-विशेषेण कथयस्व मयि प्रभो ॥

श्रीशिव उवाच—

कुलं च सर्व-जातीनां कुलीनानां कुलार्चने ।
सिद्ध-विद्या-विशेषेण सिद्धिदा कुल-पूजने ॥
श्यामा-विद्या न सिद्धयन्ति नापिताङ्गनया विना ।
तारा-विद्या न सिद्धयन्ति चाण्डाली-गमनं विना ।
श्रीविद्या च न सिद्धयन्ति ब्राह्मणी-गमनं विना ।
छिन्नमस्ता न सिद्धयन्ति कापाली-गमनं विना ॥
सिद्ध-विद्या न सिद्धयन्ति भूमीन्द्र-तनयां विनां ।
जल-कान्त-गृहे देवि ! भैरवी च सुसिद्धयति ॥
मध्यमा रहिता प्रोक्ता विहिता द्रुत-सिद्धिदा ।
साधयेद् रजनीं सर्वां ब्राह्मणीं यवनीं विना ॥
सर्वावस्थां परित्यज्य साधयेद् द्विजजां द्विजः ।
राज-राजेश्वरी साक्षात् द्विजजा-रूप-धारिणी ॥
द्विजजा-तोषणादेव द्रुतं सिद्धयति सुन्दरि !
श्रेष्ठ-वर्णोद्भवां रम्भां साधने नैव साधयेत् ॥

साधयेत् सिद्धि-हानिः स्याद् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि रजनीं साधनान्तरां ।
यस्मिन् कृते भवेत् सिद्धिर्देवानामपि दुर्लभा ॥
रजनी-द्वि-गुणं वीक्ष्य सहस्रं यदि साधकः ।
पञ्चाशद्-दिवसं यावत् तावच्च प्रत्यहं जपेत् ॥
सम्पूज्य रजनीं भूमिं सङ्क्रम्य प्रजपेन्मनुं ।
तदा वादी सुसिद्धः स्याज्जपेत् क्षिति-तनुं विशेत् ॥
पर्वते हस्तमारोप्य शतशः शुद्ध-भावतः ।
कवितां लभते धीमान् देवी-लोकं मृते व्रजेत् ॥
पद्म-मध्यं तथा बिम्बं खञ्जनं शिखरं तथा ।
चामरं वारि-बिम्बं च तिल-पुष्पं सरोरुहं ॥
त्रि-सूत्रं वीक्ष्य सञ्जप्य शतशः शुद्ध-भावतः ।
स सर्व-रजनी-नाथः कलौ कल्प-लता भुवि ॥
सम्पूज्य रजनी-गेहं मनुं तत्रैव संलिखेत् ।
कलां वा कण-मात्रेण देवीं ध्यात्वा पुनर्यजेत् ॥
तदुद्भवेन पुष्पेण पूजयेद् भक्ति-भावतः ।
स याति शिवतां भूमौ कुल-द्रुम-गतः शुचिः ॥
ब्रह्म-तरौ महा-पद्मे ध्यात्वा देवीं प्रपूजयेत् ।
तत्सुधा-सार-सारेण तर्पयेन्मातृका-मुखे ॥
कला-पूजा-क्रमेणैव रजनी - वेष्टिते यदि ।
महा-निशि जपेन्मन्त्रं ध्रुवं मोक्षं स चार्हति ॥

तिथि-क्रमेण कामेन रजनी-वेष्टिता जपेत् ।
तदा मासेन सिद्धिः स्यात् सहस्र-जप-मानतः ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां द्वि-गुणं यदि दृश्यते ।
मन्त्रं कलान्तरे देवि ! लिखित्वा कुंकुमेन च ॥
तत्पार्श्वे साध्यमालिख्य ताडयेत् सृष्टि-वृष्टिभिः ।
साध्य-सूक्तं जपेत् तत्र कामार्ता तत्र लभ्यते ॥
तत्र पूजां चरेद् धीमान् महा-चीन-क्रमेण च ।
ग्रामे पातालके रम्ये श्मशाने प्रान्तरेऽपि वा ॥
विलिख्य यन्त्र-मन्त्रं च कामाख्यायां प्रपूजयेत् ।
तदा राज्यमवाप्नोति इहैव कुल-सुन्दरि ॥
मृते च मोक्षमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ।
रजो-मूले रजन्यां तु यो याति बिल्व-पत्रकैः ॥
देवीमभ्यर्च्य सहस्रं तु प्रजपेत् पितृ-कानने ।
तदा राज्यमवाप्नोति यदि वा न पलायते ॥
चितायां रजनी-गेहे सङ्गम्य च जपेन्मनुं ।
यं यं कामयते कामं तं तमेव ध्रुवं लभेत् ॥
पुनश्च तत्र सम्पूज्य स्वयम्भू-कुसुमेन च ।
इहैव जायते सौख्यमन्ते च मोक्षमाप्नुयात् ॥
महा-भूतादिने नक्तं श्मशाने रजनी-युतः ।
सहस्रैक-प्रमाणेन किं न सिद्ध्यति भू-तले ॥

रजनी-रजसा देवि ! पिण्डं च परि-कल्पयेत् ।
यन्नाम्ना दीयते पिण्डं न गच्छेत् स यमालयं ।।
रजनी-वेष्टनादेव यत्फलं लभते प्रिये !
तस्यापि षोडशांशं च चरेन्मार्गेण लभ्यते ।।
शवासनाधिक-फलं लता-गेहे प्रवेशनं ।
तस्यापि षोडशांशं च कलां नार्हन्ति ते शवाः ।।

।। इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे पार्वती-शिव-सम्वादे त्रयोदशः पटलः ।।
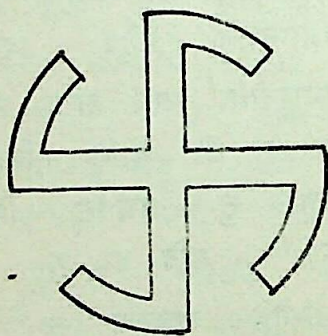
चतुर्दशः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

वेश्या च कीदृशी देव ! प्रशस्ता कुल-पूजने ?
कस्याः संसर्ग-मात्रेण श्रेष्ठो भवति साधकः ॥
नाना-कुल-गता वेश्या कथं शस्ता कुलार्चने ?

श्रीशिव उवाच—

गुप्त-वेश्या महा-वेश्या कुल-वेश्या महोदया ।
राज-वेश्या देव-वेश्या ब्रह्म-वेश्या च सप्तधा ॥
कुलजा गुप्त-वेश्या स्यान्निर्लज्जा मदनातुरा ।
पशु-भर्ताश्रिता लोके गुप्त-वेश्या प्रकीर्तिता ॥
कुलजा कुल-वेश्या च महा-वेश्या प्रकीर्तिता ।
महा-वेश्या कुलेशानि ! स्वेच्छया च दिगम्बरी ॥
कुल-वेश्या कुलीना च वीर-पत्नी कुलेश्वरि !
महोदया समाख्याता स्वेच्छया विपरीतगा ॥
राज-वद् या च वेश्या स्याद् राज-वेश्या प्रकीर्तिता ।
देवं संयोज्य चक्रे च जप्त्वा तु विन्दु-पातनं ॥
भग-लिङ्ग-कपाले च चुम्बयेच्च पुनः पुनः ।
एवं-विधा कुलीना चेद् ब्रह्म-वेश्या प्रकीर्तिता ॥

दिव्य-शक्तिर्वीर-शक्तिस्तासां संज्ञा प्रकीर्तिता ।
चतुर्वर्णोद्भवानां च संज्ञिताः परिभाषिताः ॥
वेश्या-वद् भ्रमते यस्मात् तस्माद् वेश्या प्रकीर्तिता ।
वर्ण-सङ्करतो जाता सर्व-वेश्याः प्रकीर्तिताः ॥
कुल-मार्गे प्रवृत्ता या सा वेश्या मोक्ष-दायिनी ।
चुम्बनालिङ्गनाघातं रति-विग्रह-दर्शनं ॥
आमन्त्रणं त्रि-सन्ध्यं च भग-लिङ्गस्य कीर्तनं ।
वेश्यानां च जपाङ्गेदं शङ्करेण पुरोदितं ॥
जपाङ्गेन विना वेश्या न कुर्यात् स्थिर-सङ्गमं ।
जपाङ्गं प्रत्यहं कुर्यात् सा शिवः सह मोदिता ॥
निशायां प्रजपेन्मन्त्रं स्वयम्भू-शिव-योगातः ।
वेश्यानां जप-मात्रं तु पुरश्चरणमुच्यते ॥
विपरीता जपेन्मन्त्रं सा काली नात्र संशयः ।
योषितां मन्त्र-सिद्धिः स्याद् विपरीत-रतौ प्रिये ॥
विपरीत-रतौ जप्त्वा सर्व-सम्पत्तिमालभेत् ।
विपरीत-रतौ जप्त्वा निर्वाण-पदवीं व्रजेत् ॥
विपरीत-रतौ जप्त्वा काली-वद् विहरेत् भुवि ।
विपरीत-रता काली विपरीता च तारिणी ॥
विपरीता च या वेश्या सा काली नात्र संशयः ।
योषिद्-विद्या न सिद्ध्यन्ति विपरीत-रतिं विना ॥

विपरीत-रता वेश्या त्रिषु लोकेषु पूजिता।
गाढमालिङ्गनं दत्वा चुम्बयित्वा पुनः पुनः॥
कटाक्षैर्दर्शयेद् यन्त्रं दक्षिणा कौलिकीरिता।
एवं-विधा पुरश्चर्या वेश्यायाश्च कुलेश्वरि॥

एवं-विधा भवेद् वेश्या न वेश्या कुलटा प्रिये!
कुलटा-सङ्गमादेव रौरवं नरकं व्रजेत्॥

वीर-शक्तिर्भवेद् वेश्या सा शस्ता स्व-स्व-साधने।
पुरश्चर्याश्च ता वेश्या योजयेत् कुल-साधने॥
शिव-लिङ्ग-गता साध्वी शिव-लिङ्ग-गता सती।
शिव-लिङ्ग-गता वेश्या कीर्तिता सा पतिव्रता॥

योनिश्च जनिका माता लिङ्गश्च जनकः पिता।
विभाव्य पितरौ भावं उभयोः परि-चिन्तनं॥
लिङ्ग-रूपो महा-कालो योनि-रूपा च कालिका।
तयोर्योग-परा धन्या तयोर्योग-परो महान्॥
स्व-भैरवं विना वेश्या शिव-पूजां करोति या।
रौरवे नरके घोरे वसेदाहूत-सम्प्लवं॥
स्व-भैरवीं विना वीरो मनसा नैव संस्मरेत्।
स्मरेच्च नरकं याति महा-व्याधि-परो भवेत्॥
नाना-वीराश्रिता वेश्या पशु-वेश्या कुलेश्वरि!
सा वेश्या नरकं याति सत्यं सत्यं न संशयः॥

कामाद्वा लोभतो वापि धनाद्वा वर-वर्णिनि !
नाना-वीराश्रिता वेश्या वेश्या च नरकं व्रजेत् ॥
धनाद्वा कामतो वापि लोभाद्वा कुल-सुन्दरि !
पशु-सङ्ग-गता वेश्या सा वेश्या नरकं व्रजेत् ॥
नाना-वीराश्रिता वेश्या पशु-सङ्ग-गता च या ।
वर्जनीया प्रयत्नेन कुल-साधन-कर्मणि ॥
योज्या चेत् सिद्धि-हानिः स्याद् भ्रष्ट-वेश्या कुलार्चने ।
रोगः शोको भवेत् तस्य धन-हानिः क्षणं क्षणे ॥
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन स्व-शिवं च समाश्रयेत् ।
जप-पूजादिकं वेश्या स्व-शिवे परि-कल्पयेत् ॥
पुष्पिता काममापन्ना सदा रमणमिच्छुका ।
सर्व-सिद्धि-प्रदा वेश्या कालिका-रूप-धारिणी ॥
पितृ-भूमिः समाख्याता सदाशिव-निवासिनी ।
शिव एव नरो ज्ञेयो लिङ्ग-रूप-धरो यतः ॥
शिव-स्थानं श्मशानं स्यात् श्मशानं कुलजं गृहं ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥
श्मशाने नागते नार्चेत् अवश्यं पशु-वद्भवेत् ।
तन्मन्त्रं पूजितं येन सर्व-मन्त्रं प्रपूजितम् ॥
तत्र सञ्जप्य देवेशि ! निर्वाण-पदवीं व्रजेत् ।
मातृ-मुखे पितृ-मुखं दत्वा जपेत् कालीं सनातनीं ॥

सर्व-पाप-विनिर्मुक्तो निर्वाण-पदवीं व्रजेत् ।
परस्मिन् गुप्त-वेश्या वाप्यथवा कुलीना भवेत् ॥
शुक्रोत्सारण-कालं तु निर्वाणं विद्धि पार्वति !
तत्कालस्तु महा-कालः फल-मार्ग-प्रवेशिनां ॥
शुक्रोत्सारण-कालं तु कायेन मनसापि वा ।
अङ्ग-भङ्ग-क्रमेणैव कुलीनाय प्रकाशयेत् ॥
शुक्रोत्सारण-कालस्य ज्ञापनात् कालिका स्वयं ।
जपाङ्गे कालिका देवी महा-कालं विमोहयेत् ॥
कुलीना ब्रह्म-वेश्या चेन्नाल्पस्य तपसः फलं ।
बहुना जन्मनामन्ते ब्रह्म-वेश्या प्रजायते ॥
त्वत्समा प्रकृतिः काचिद् यदस्ति भूमि-मण्डले ।
न तथा त्वत्समो शक्तिस्त्रिषु लोकेषु गीयते ॥
सा चैव दक्षिणा काली मदनातुर-विह्वला ।
वेदेभ्यो जायते कर्म कर्मणा बन्धनं भवेत् ।
वैदिकं कर्म सन्त्यज्य सुरतेषु सदा जपेत् ।
आगमोक्त-पतिः शम्भुरागमोक्तः पतिर्गुरुः ॥
स्व-पतिः कुलजायाश्च न पतिश्च विवाहितः ।
विवाहित-पति-त्यागे दूषणं न कुलार्चने ॥
विवाहितं पतिं नैव त्यजेद् वेदोक्त-कर्मणि ।
आगमोक्त-पतिस्त्राता आगमोक्त-पतिः शिवः ॥

❀ निरुत्तर तन्त्रम् : चतुर्दशः पटलः ७३

सिद्ध-विद्या न सिद्धचन्ति आगमोक्त-पतिं विना।
आगमोक्त-पतिर्देवि ! योषितां मोक्ष-दायकः ॥
कालीं नैव यजेद् योषिदागमोक्त-पतिं विना।
कुलजा गुरवे देवि ! पतित्वे वरणं चरेत् ॥
तदा सा गुप्त-वेश्या स्यात् कुलजा च पतिं विना।
गुप्त-वेश्या भवेत् सैव कुल-मार्ग-प्रवर्तिता ॥
कुल-मार्ग-प्रसक्ताया सा मुक्ता नात्र संशयः।
कुलजा गुरवे देवि ! यदि न स्यात् पतीच्छुका ॥
तस्याः शिवो महा-कालः सत्यं सत्यं न संशयः।
षोडशाब्दा सदा सा स्यात् काली विक्रम-तत्परा ॥
तारा पञ्च-दशाब्दा चेत् चतुर्दशाब्दा च सुन्दरी।
त्रयोदशी चोन्मुखी सा द्वादशाब्दा च भैरवी ॥
एकादश-गुणोपेता ब्रह्म-वेश्या कुलेश्वरि !
महा-साध्वी समाख्याता त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले या यास्तिष्ठन्ति चाङ्गनाः।
सर्वासामपि भर्ता च दिव्यो वीरश्च साधकः ॥
योगी दिव्यो यदा वीरः सर्व-नारी-पतिर्भवेत्।
दिव्योऽपि वीर-भावेन सर्व-जात्युद्भवां यजेत् ॥
गुप्त-वेश्या महा-वेश्या अयोध्या मथुरा प्रिये !
माया च कुल-वेश्या स्यात् महोदया च कालिका ॥

राज-वेश्या देव-वेश्या द्वारका परि-कीर्तिता ।
काञ्ची च राज-वेश्या स्याद् देव-वेश्या अवन्तिका ।।
द्वारावती ब्रह्म-वेश्या सप्तैता मोक्ष-दायिका ।
कुलीना भगवती साक्षात् काली तारा सरस्वती ।।
कुलीना भैरवी राधा कुलीना छिन्नमस्तका ।
कुलीना सुन्दरी देवि ! कुलीना महिष-मर्दिनी ।।
कुलीना भुवना बाला कुलीना बगलामुखी ।
धूमावती कुलीना च मातङ्गी कुलीना प्रिये ।।
कुलीना चान्नपूर्णा च त्रिपुटा त्वरिता तथा ।
पतिव्रता कुलीना च सती साध्वी महोदया ।।
कुलीना मन्त्र-तन्त्राणां सिद्धिदा नात्र संशयः ।
कुलजा देव-कन्या च कुलीना योगिनी-गणाः ।।
रम्भोर्वशी रती-रामा तिलोत्तमा कुल-सुन्दरी ।
एताः सर्वाः पृथग् विहरन्ति कुलात्मजाः ।।
कुलजाः कुल-वेश्या याः कुल-धर्म-परायणाः ।
पशु-भर्त्राश्रिता लोका काम-कौतुक-लालसाः ।।
कुल-वर्त्म-क्रमेणैव सदैव रमणोत्सुका ।
विदग्धा वीर-भावेन वीर-गोपन-तत्परा ।।
विहितान्यां हीन-जातां पूजयेदथवा यतः ।
ब्रह्मचारी गृहस्थोऽपि विहितान्यां न चार्चयेत् ।।

अर्चयेत् सिद्धि-हानिः स्याद् दुःखं तस्य पदे पदे ।
हीनजां विहितां वेश्यां मनसा च प्रपूजयेत् ॥
तद्-योगं चिन्तयेद् धीमान् शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
जप्त्वा प्रणम्य देवेशि ! भक्ष्य-द्रव्यं निवेदयेत् ॥
कामाद्वा मोहतो वापि हीनजां यदि चेच्छति ।
रौरवं नरकं याति हीनजा-सङ्गमेन च ॥
हीनजा-सङ्गमं देवि ! मनसा न स्मरेत् कलौ ।
कुल-कर्म-प्रवृत्ता या सा मुक्ता नात्र संशयः ॥
कुलजा कुल-वेश्या च बीजमेकं समाश्रयेत् ।
सन्त्यज्य पशु-भर्तारं कुल-मार्गे प्रवेशयेत् ॥
कुल-मार्गं समाश्रित्य वीरमेकं समाश्रयेत् ।
कुल-मार्ग-प्रवृत्ता चेत् पति-हीना भवेद् यदि ॥
कुलजा वा कुलीना वा पर-जन्मनि जायते ।
कुल-धर्म-रता शस्ता कुल-धर्मोत्सुका तथा ॥
पूजार्हा सा महेशानि ! पति-हीना प्रपूजयेत् ।
लोकाचार-क्रमेणैव पूजार्हा लंघिता यदि ॥
तां विहाय कुलेशानि ! कुलजां च प्रपूजयेत् ।
गङ्गा-स्मरण-मात्रेण तथा पाप-क्षयो भवेत् ॥
कुलजा च कुलीनाय मन्त्र-तन्त्र-फल-प्रदा ।
महा-वेश्या भवेत् सैव सर्व-वेश्या फल-प्रदा ॥

यासां च सर्व-विद्यानां प्रशस्ता या कुलार्चने ।
सैव शक्तिर्विशेषेण सर्व-वेश्याः प्रकीर्तिताः ॥
कुलीना-दर्शनेनैव सर्व-पाप-क्षयो भवेत् ।
कुलजानां पुरश्चर्यां कुलीना-वत् कुलेश्वरि ॥
सर्व-वेश्या हीनजा च सर्व-सिद्धि-प्रदायिनी ।
अनेक-जन्मनामान्ते कुल-धर्मः प्रवर्तते ॥

कुल-धर्मं विना देवि ! न च मोक्षः प्रजायते ।
कुल-पूजां विना देवि ! सुन्दरी नैव सिद्धयति ॥
कुल-पूजां विना देवि ! पञ्चमी नहि सिद्धयति ।
कुल-पूजां विना नैव भैरवी न च सिद्धयति ॥

कुल-पूजां विना देवि ! छिन्नमस्ता न सिद्धयति ।
कुल-पूजां विना देवि ! काली-कुलं न सिद्धयति ॥
कुल-पूजां विना देवि ! तत्त्व-ज्ञानं न जायते ।
तत्त्व-ज्ञानं विना देवि ! निर्वाणं नैव जायते ॥

निर्वाणं श्रेयसं प्राप्य मम योगं प्रजायते ।
निर्वाणं श्रेयसं चापि मूलं च कुल-मन्दिरं ॥

पञ्चमैः पूजयेत् कालीं कुलीनं च कुल-मन्दिरे ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥
इन्द्रादि दश-दिक्पाला आदित्यादि-नव-ग्रहाः ।
असिताङ्गादयो ये ये भैरवाश्च सुरादयः ॥

कुल-पूजा-कृताः सर्वे कृतार्थाः कुलीना-गृहे ।
शक्तिं विना महेशानि ! शक्ति-मन्त्रो न सिद्धयति ।।
सर्वेषां शक्ति-मन्त्राणां शक्तिः सिद्धि-प्रदायिनी ।
नटी कापालिका वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।।
योगिनी श्वपची शौण्डी भूमीन्द्र-तनया तथा ।
गोपिनी मालिका रम्या आसां कार्य-विभेदतः ।।
चतुर्वर्णोद्‌भवा रम्या कापाली सा प्रकीर्तिता ।
पूजा-द्रव्यं समालोक्य नृत्य-गीत-परायणा ।।
चतुर्वर्णोद्‌भवा रम्या सा नटी परि-कीर्तिता ।
पूजा-द्रव्यं समालोक्य वेश्या रमणमिच्छता ।।
चतुर्वर्णोद्भवा रम्या सा वेश्या परि-कीर्तिता ।
पूजा-द्रव्यं समालोक्य रजोऽवस्थां प्रकाशयेत् ।।
सर्व-वर्णोद्भवा रम्या रजकी सा प्रकीर्तिता ।
पूजा-द्रव्यं समालोक्य कुलजा वीरमाश्रयेत् ।।
सन्त्यज्य पशु-भर्तारं कर्म-चाण्डालिनी स्मृता ।
शिव-शक्ति-समायोगा योगिनी सा व्यवस्थिता ।।
विपरीत-रता पत्यौ पात्रं या परि-पृच्छति ।
सर्व-वर्णोद्भवा रम्या सा शौण्डी परि-कीर्तिता ।।
सर्वदा यन्त्र-संस्कारो यस्याश्च परि-जायते ।
सैव भूमीन्द्रजा रम्या सर्व-वर्णोद्भवा प्रिये ।।

अथान्यं गोपयेद् यस्तु सर्वदा पशु-सङ्कटे ।
सर्व-वर्णोद्भवा रम्या गोपिनी सा प्रकीर्तिता ॥
पूजा-द्रव्यं समालोक्य या मनौ परिकीर्तिता ।
सर्व-वर्णोद्भवा रम्या मालिनी सा प्रकीर्तिता ॥
शक्त्यभावे महेशानि ! यासां च काञ्चिदाहरेत् ।
संशोध्य पञ्चमं तत्वं तर्पयेत् कुल-सुन्दरि ॥
अंगुष्ठानामिका-योगाद् वाम-हस्तस्य पार्वति !
तर्पयेत् कालिकां वीरः सायुधां परि-वाहनां ॥
अंगुष्ठो भैरवो देवः अनामा शक्तिरुच्यते ।
शिव-शक्ति-समायोगात् तर्पयेद् देवि ! दक्षिणां ॥
तर्पणं त्रिविधं देवि ! श्रेष्ठं मध्यं कनीयसं ।
श्रेष्ठं च दिव्य-भावस्य वीर-भावस्य मध्यमं ॥
कनीयांसं पशूनां च हृदि यन्त्रे जले क्रमात् ॥

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-सम्वादे चतुर्दशः पटलः ॥

पञ्चदशः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

देव-देव महा-देव कुल-मार्ग-प्रकाशक !
पञ्चमं कीदृशं द्रव्यं तेषां शुद्धिस्तु कीदृशी ॥
तत्प्रकाशय सम्यङ् मे मयि नाथ ! कृपां कुरु ।

श्रीशिव उवाच—

मद्यं मांसं तथा मीनं मुद्रा मैथुन-पञ्चमं ।
एषां शुद्धि प्रवक्ष्यामि मन्त्र-कोष-क्रमेण च ॥

निशीथे मुक्त-केशश्च सुकुलं वाम-भागतः ।
संस्थाप्य न्यास-जालं च तद्-गात्रे विन्यसेत् क्रमात् ॥
स्व-गात्रे च ततो न्यस्य न्यास-जाल-क्रमेण च ।
भूत-शुद्धिर्विधेया च वर्ण-न्यासं ततश्चरेत् ॥
अङ्ग-न्यास-कर-न्यासौ लिपि-न्यासं तु तत्परं ।
ततोऽन्तर्मातृकां कृत्वा मातृका-न्यासमाचरेत् ॥
प्राणायामं ततः कृत्वा ऋषि-न्यासं ततः परं ।
पीठ-न्यासं व्यापकं च काली-कुलस्य पूजने ॥
क्रम-भङ्गो भवेन्नैव भवेच्च विफलं ध्रुवं ।
जप-पूजादिकं कर्म सर्वं निष्फलतामियात् ॥

तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन क्रम-भङ्गं न कारयेत् ।
जीव-न्यासं व्यापकादौ विद्या-राज्ञीं प्रपूजयेत् ॥
षोढा-न्यासं नील-कण्ठं कामं च परि-कीर्तितं ।
ततो ध्यात्वा महा-कालीं मानसैः परि-पूजयेत् ॥
ततश्च पञ्चमं शुद्धं विशेषार्घ्यं ततः परं ।
ततः कुलं च सम्पूज्य पञ्चानां शुद्धिमाचरेत् ॥
स्व-वामे विन्दु-षट्-कोणं वृत्तं च चतुरस्रकं ।
चतुर्द्वारं च संलिख्य सामान्यार्घ्योदकेन च ॥
अभ्युक्षणं ततः स्थानं तत्र देवीं विचिन्तयेत् ।
नम इति क्षालिताधार-यन्त्रं संस्थाप्य पूजयेत् ॥
वह्नेर्दश-कलां तत्र पूजयेद् विधि-पूर्वकम् ।
आद्यष्ट-देव्यः सम्पूज्याः तथा धूम्रार्चिका कला ॥
पूर्वं त्रि-पदिकामिष्ट्वा गन्ध-पुष्पेण पूजयेत् ।
अष्ट-दिक्षु च सूर्यस्य द्वादशीं कलां ॥
ततश्च रक्त-वस्त्रेण वेष्टयेद् घटमुत्तमं ।
घटं सम्पूरयेद् देवि ! हेतुना मूलमुच्चरन् ॥
ॐ अमृतादिक-सोमस्य कलास्तत्रैव पूजयेत् ।
तत्रापि पञ्च-मुद्राभिः प्रणम्य तु कुलेश्वरि ॥
नितम्ब-सवशाकारैर्नमो कर-तल-द्वयं ।
ह्रीं नमः इति नमस्कुर्यात् चतुरस्रा तु सा स्मृता ॥

पुटाकार करं बध्वा मुष्टि-बद्धं च भू-तले ।
विधाय च नमस्कुर्यात् ह्रीं नमः सम्वृताः स्मृताः ॥
कृत्वा पुटाञ्जलिं भूमौ क्लीं नमः प्रणमेत् प्रिये !
कथिता सम्पुटा मुद्रा शृणु देवि ! पुटाञ्जलिं ॥
वृद्धा-कनिष्ठयोर्मूले निःक्षिप्य च पुटाञ्जलिं ।
कृत्वा च हूं नमो भूमौ प्रणमेत् सा पुटाञ्जलिः ॥
सः नमो योनि-मुद्रायाः पञ्च-मुद्राः प्रकीर्तिताः ।
ततः कुम्भ-समीपे तु चन्दनेन च संलिखेत् ॥
त्रिकोण-वृत्त-भू-बिम्बं तत्र सर्व-पथिकाय च ।
पूजयित्वा बलिं तत्र निधाय परमेश्वरि ॥
माया-त्रि-सर्व-पथिकाभ्यो नमः प्रिये !
बलिमुत्सृज्य देवेशि ! तत्त्व-मुद्रा-क्रमेण च ॥
वाम-हस्तेन तत्त्वस्य मुद्रां बध्वा महेश्वरि !
त्रि-परिभ्राम्य मूलेन द्रव्योपरि कुलेश्वरि ॥
देवता-पश्चिमे भागे स्थापयेत् तत् कुलेश्वरि !
एवं सुधूपितं कृत्वा पञ्चीकरणमाचरेत् ॥
द्रव्यं दर्भैश्चास्त्र-मन्त्रैः सन्ताड्य परमेश्वरि !
हमिति वाम-हस्तेन मुष्टि कृत्वा कुलेश्वरि ॥
अधोमुख्या च तर्जन्या वेष्टयेत् त्रिः कुलेश्वरि !
मूलेन वीक्षणं देवि ! अस्त्रेणाभ्युक्षणं चरेत् ॥

त्रि-सुगन्धश्च मूलेन गृह्णीयात् परमेश्वरि !
पञ्चीकरणमित्युक्तं क्रमशो विद्धि पार्वति ॥
कुम्भे पुष्पं ततो दत्वा प्रणवेन कुलेश्वरि !
त्रिकोणं तत्र संलिख्य तन्मध्ये च हसौः प्रिये ॥
हसौः हसौः नमोऽन्तेन त्रिश्च तत्र प्रपूजयेत् ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वरुणं तदनन्तरं ॥
वामदेवं ततो ङेन्तं वौषट् मन्त्रेण पूजयेत् ।
सम्पूज्य वाम-देवं च पशुपतिं ततो यजेत् ॥
प्रणवं कूर्च-वीजं च ङेन्तं पशु-पतिं ततः ।
कूर्च-युग्ममस्त्र-वीज-मन्त्रे पशुपतिं यजेत् ॥
माया-वीजं समुच्चार्य काली-वीजं ततः परं ।
ततः परं पदं देवि ! स्वामिनि च ततः परं ॥
परा-कोष-गता देवी शून्य-वाहिनी ततः परं ।
चन्द्र-सूर्याग्नि-भक्षिणी पश्चात् पात्रं च तदनन्तरं ॥
विष-युग्मं वह्नि-जाया दशधा संजपेत् प्रिये !
वाग्भवं भुवना लक्ष्मीः आनन्देश्वर-ङेन्तकं ॥
विद्महे च ततो देवि ! धीमहीति तदनन्तरं ।
इति गायत्रीं त्रिर्जप्त्वा ऋक्-त्रयं च जपेदिति ॥
ॐ रां रीं रूं समुद्धृत्य रैं रौं क्रौं क्रौं क्रस्ततः परं ।
ततः स्वधा कृष्ण-शापं मोचय-द्वय ततः परं ॥

अमृतं स्रावय-द्वन्द्वं वह्नि-जाया कुलेश्वरि !
इति द्वादशधा जप्त्वा मन्त्राण्येतानि त्रिर्जपेत् ॥
ॐ एक एव परं-ब्रह्म स्थूल-सूक्ष्म-मयं ध्रुवं ।
कचोद्भवां ब्रह्म-हत्यां तेन ते नाशयाम्यहं ॥
ॐ सूर्य-मण्डल-सम्भूते वरुणालय-सम्भवे ।
अमा-वीज-मये देवि ! शुक्र-शापाद् विमुच्यते ॥
ॐ देवानां प्रणवो वीजं ब्रह्मानन्द-मयं यदि ।
तेन सत्येन मे देवि ! ब्रह्म-हत्यां व्यपोहतु ॥
इति मन्त्र-त्रयेणैव त्रिधा समभिमन्त्र्य च ।
ह्रीं श्रीं श्रूं श्रींकारेति शोभिनि च ततः परं ॥
ततो विकारानस्येति द्रव्यस्य हर-द्वय वह्नि-वल्लभा ।
इति त्रयं जप्त्वा द्रीं श्रीं ऐं च ततः परं ॥
इति प्रकाशिनीं त्रिश्च जप्त्वा तिरस्करणीं जपेत् ।
ह्रीं क्लीं ऐं श्रौं समुद्धृत्य तिरस्करणी ततः परं ॥
सकल-जन-वाग्वादिनि ततः सकल-पशु-वृते ।
जन-मनश्चक्षुस्ततो देवि ! श्रोत्र-जिह्वा ततः परं ॥
प्राणोक्ति-तिरस्करणं कुरु-युग्मं ततः परं ।
नीलं हयं समधिरुह्य पुरः प्रयान्ती ॥
नीलांशुकाभरण-माल्य-विलेपनाढ्या ।
निद्रा-पटेन भुवनानि तिरोदधाना ॥

खड्गेन भुजैर्भगवती परिपातु भक्तान् ।
इति ध्यात्वा कुलेशानि ! इमं मन्त्रं त्रिधा जपेत् ॥
ठः ठः वह्नि-वधूर्देवि ! द्रव्योपरि त्रिधा जपेत् ।
पवमानः परानन्दः परिमाणः परो रसः ॥
पवमानं परं ज्ञानं तेन त्वां पावयाम्यहं ॥
पावमानं च त्रिर्जप्त्वा वायु-वीजेन शोधयेत् ॥
रमिति वह्नि-वीजेन सन्दह्य प्रणमेदिति ।
काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ॥
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।
वगला सिद्ध-विद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ॥
एता दश महा-विद्याः सिद्ध-विद्याः प्रकीर्तिताः ।
काली तारा तथा छिन्ना मातङ्गी भुवनेश्वरी ॥
अन्नपूर्णा तथा नित्या दुर्गा महिष-मर्दिनी ।
त्वरिता त्रिपुरा पुटा भैरवी वगला तथा ॥
धूमावती तथा ज्ञेया कमला च सरस्वती ।
जय-दुर्गा तथा भद्रे ! तथा त्रिपुर-सुन्दरी ॥
अष्टादश महा-विद्या तन्त्रादौ कथिताः प्रिये !
नात्र काल-विशुद्धिः स्यात् समया समयादिकं ॥
न वार-तिथि-नक्षत्रं न योग-करणं तथा ।
सिद्ध-विद्या महा-विद्या युग-सेवा प्रकीर्तिताः ॥

॥ इति श्रीनिरुत्तर-तन्त्रे शिव-पार्वती-संवादे पञ्चदशः पटलः ॥